CHAPTER 51

SANSKRIT

Doctoral Theses

01. अंगिरस

प्राचीन भारत में काल-गणना पद्धतियाँ (7वीं शताब्दी तक के संस्कृत-प्राकृत अभिलेखों के सन्दर्भ में)।

निर्देशक : प्रो. अखिलेश कुमार दुबे

Th 28155

सारांश

किसी कठोर आधार पर उत्कीर्ण लेख जिसका कोई ऐतिहासिक महत्त्व हो अथवा जिसके ऐतिहासिक महत्त्व की सम्भावना हो, अभिलेख कहलाता है। अभिलेख प्रायः पाषाण, शिला, स्तम्भ, मूर्त्ति, स्मारक, गुहा-भित्ति, धातु-पत्र, हाथी-दाँत तथा मुद्राओं आदि पर उत्कीर्ण किये जाते थे। ये अभिलेख विशेष अवसरों पर किसी शासक अथवा उनके अमात्य, सामन्त इत्यादि शुभचिन्तकों द्वारा उत्कीर्ण करवाए जाते थे। इन अभिलेखों में प्रायः राजकीय आदेश, विजयगाथा, महत्त्वपूर्ण सूचना, धार्मिक कृत्य, दान, प्रशंसा इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है। सम्पूर्ण भारत में विभिन्न स्थलों से ऐतिहासिक महत्त्व से युक्त प्राचीनकाल के सहस्राधिक अभिलेख प्राप्त हुए है। शोधार्थी द्वारा 7वीं शताब्दी तक के संस्कृत प्राकृत अभिलेखों को चयनित करते हुए इस विषय का चयन किया गया है "प्राचीन भारत में काल-गणना पद्धतियाँ (7वीं शताब्दी तक के संस्कृत-प्राकृत अभिलेखों के सन्दर्भ में)" को शोध के विषय के रूप में चयरित किया गया ताकि कालगणना की ये पद्धतियाँ अध्येतृगणों को सुलभतापूर्वक अवबोधित हो सकें। उक्त शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में कालगणना का वर्णन कृत है। इसके द्वितीय अध्याय में सप्तम शताब्दी ईस्वी तक के अभिलेखों का सामान्य परिचय प्रदत्त है जो भारत के ऐतिहासिक विभाजन के आधार पर प्राचीन भारत के अभिलेखों की श्रेणी में गणित है। तृतीय अध्याय में प्राचीन भारतीय अभिलेखों में प्रयुक्त तिथ्यंकन का विवेचन है। चतुर्थ अध्याय में अभिलेखों में वर्णित काल गणना की पद्धतियों का विस्तृत विश्लेषण एवम् अध्ययन है। पंचम अध्याय में भारत में प्रचलित प्रमुख सम्वतों का विस्तृत विवेचन दिया गया है। आशान्वित है कि यह शोधकार्य निस्संदेह आगामी शोधार्थियों के लिए सहायक सिद्ध होगा।

विषय सूची

1. कालगणना : एक विवेचन 2. 7वीं शताब्दी ईस्वी तक के संस्कृत-प्राकृत अभिलेखें का सामान्य परिचय 3. प्राचीन भारतीय अभिलेखें में तिथ्यंकन 4. प्राचीन भारतीय अभिलेखें में कालगण्ना पद्धतियॉ 5. भारत में प्रचलित प्रमुख सम्वत्। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्ट।

02. अरविंद

प्राचीन भारतीय मुद्राओं पर उत्कीर्ण लिपि आलेखों का तुलनात्मक अध्ययन (मौर्य राजवंश से गुप्त राजवंश तक की मुद्राओं के विशेष सन्दर्भ में)

निर्देशक : प्रो. अखिलेश कुमार दुबे

Th 28152

सारांश

भारतीय प्राचीन मुद्राओं पर उत्कीर्ण कला तत्वों के अध्ययन आधार पर मैंने पाया कि मुद्राओं पर कलाकार द्वारा उत्कीर्ण रेखाओं का आनन्द और मन्त्र मुग्ध कर देने के समस्त गुण उपलब्ध थे। उत्कीर्ण रेखाओं की गति संयोजन का संपुजन व यथार्थ ऐसा था मानों कोई आधुनिक कलाकार किसी आकृति की संरचना बना रहा हो। आकृतियों के निर्माण में सीधी, वक्र और आयताकार आदि ज्यामितीय रूपकारों का प्रयोग है जो प्रायः सांकेतिक जान पड़ते है। इसमें स्वस्तिक, त्रिभुज, वृत, षट्कोण तथा आयताकार शामिल है। मुद्राओं से पर्याप्त सृजनशीलता, यथार्थ मौलिक उद्भावना, सौन्दर्य बोध, रूप विन्यासगत वैविध्य, रचना कौशल और निजी वैशिष्ट्य उपलब्ध होते है। इस प्रकार इन उत्कीर्ण आकृतियां ही सरलता, सुगमता तथा सूक्ष्म रेखांकन पद्धति आज के कलाकार के लिए महान प्रेरणा है। साथ ही साथ तकनीकी विशेषता के द्वारा उत्कीर्ण रेखा मुद्राओं के अग्र तथा पृष्ठ भाग पर बनाया गया है जिससे यह स्थायी रहे। ठप्पे, ढलाई विधि द्वारा धातु की मुद्राओं का संरचना किया गया था। धातु-ताम्र, कांस्य चाँदी, सोना, शीशा, का प्रयोग किया गया था। रेखा:- सीधी, वक्र, रूपाकारों का प्रयोग बलिष्ठ आकृतियों की रेखाएँ आदि शामिल हैं। रंग - काला हरा, भूरा, नीला रासायनिक प्रक्रिया द्वारा विधि पटीना कहलाता है। तांबा, कांस्य, चाँदी, सोना का स्वभाविक रंग। रूप:- आयत, षष्ट्कोण, डमरूनुमा, वक्रशलाख, वृत्त । तान:- आन्तरिक व बाहा रिलिफ । पोत:- खुरदरी, समतल, उभार। अन्तराल:- निम्नस्तरीय एवं उच्चस्तरीय माप। इस प्रकार प्राचीन मुद्राओं के आधार पर मैं अपने शोध कार्य को पूर्ण कर इन मुद्राओं का लिपि आलेखों के आधार पर एक अध्ययन शोध को नयी दिशा प्रदान करने में सहायक होगा। अतः मुझे आशा है कि मेरा यह शोध कलाजगत व अनुसंधानकर्ताओं के लिए भी मूल्यवान व ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा।

विषय सूची

1. मौर्य कालीन मुद्राओं पर उत्कीर्ण लिपि–आलेख 2. शुङ्ग तथा कण्वकालीन मुद्राओं पर उत्कीर्ण लिपि–आलेख 3. कुषाण कालीन मुद्राओं पर उत्कीर्ण लिपि–आलेख 4. गुप्त कालीन मुद्राओं पर उत्कीर्ण लिपि–आलेख 5. मौर्य राजवंश से गुप्त राजवंश की मुद्राओं के निर्माण में प्रयुक्त धातु जकनीक काअध्ययन। उपसंहार। सन्दर्भग्रंथ सूची।

3. आर्य (निखिल राज)

आचार्य शङ्कर एवं रजनीश की तत्त्वमीमांसा: एक तुलनात्मक विमर्श (भगवद्गीता एवं उपनिषद् व्याख्यानों के विशेष सन्दर्भ में)।

निर्देशिका : डॉ. मालती राघव

Th 28759

सारांश

आचार्य रजनीश गीता व उपनिषद व्याख्यानों में अद्वैत तत्त्व की ही बात करते हैं और आचार्य शंकर का भी पूरा दर्शन अद्वैत पर ही टिका है। तब इनकी पुनरूक्ति का कारण क्या है? आचार्य रजनीश के व्याख्यान में ही हम इसका उत्तर दे पाते हैं। उनके अनुसार- "शंकर क्या कर रहे हैं? वे जो शब्द पुराने पड़ गए हैं, उनको हटाकर नये शब्द रख रहे हैं। आत्मा को नये शब्दों में प्रवेश दे रहे हैं, ताकि शंकर के युग के कान सुन सकें और शंकर के युग का मन समझ सके। लेकिन अब तो शंकर भी पुराने पड़ गए और हमेशा बात पुरानी पड़ जाएगी, शब्द तो पुराने पड़ ही जाएंगे। मैं जो कह रहा हूँ, वह थोड़े दिन बाद पुराना हो जाएगा। जरूरत होगी ताकि फिर अर्थ को शब्द से छुटकारा करा दिया जाए। व्याख्या का अर्थ है, अर्थ को, आत्मा को, शब्द से मुक्ति दिलाने की कोशिश। वह जो शब्द उसे पकड़ लेता है, उसे हटा दिया जाए, नया ताजा शब्द दे दिया जाए, ताकि आप नये ताजे शब्द को सुन सकें। मन रोज बदलता हैं और मन के बदलने के साथ मन के पकड़ने, समझने के ढंग बदल जाते हैं।" (गी.द. 5 पृ. 318) आचार्य शंकर का जहां केन्द्र ज्ञान पर है वहीं आचार्य रजनीश के व्याख्यानों में ध्यान केन्द्र में दृष्टिगत होता है। आचार्य शंकर ज्ञान को एकमात्र साधन मानते हैं, किन्तु आचार्य रजनीश के संबंध में कहा जा सकता है कि कोई भी साधन ही नहीं हैं उसका कारण यह है कि आचार्य रजनीश सभी को एक ऐसे साध्य के रूप में देखते हैं, जो अद्वैत साध्य में स्वतः परिणतः हो जाता है। उनके लिए कोई भी साधन नहीं है, इस दृष्टि से सभी मार्ग साधन बन जाते हैं।

विषय सूची

1. चैतन्य तत्व के स्वरूप 2. माया की अवधारणा 3. मुक्ति का स्वरूप 4. तत्व मीमांसा का व्यावहारिक पक्ष। उपसंहार। परिशिष्ट। सन्दर्भ ग्रंथ ।

04. आर्य (सोहन)

अष्टाध्यायी महाभाष्य पर शिवरामेन्द्र सरस्वतीकृत 'महाभाष्यरत्नप्रकाश' का समीक्षात्मक अध्ययन (१.३.१ से१.४.२२ के सन्दर्भ में)।

निर्देशक : डॉ. सोमवीर सिंघल एवं डॉ. अजित कुमार एवं प्रो. ओमनाथ बिमली एवं डॉ. अजित कुमार

Th 28153

सारांश

शोधसार अष्टाध्यायी महाभाष्य पर शिवरामेन्द्र सरस्वतीकृत 'महाभाष्यरत्नप्रकाश' का समीक्षात्मक अध्ययन (१.३.१ से १.४.२२ के सन्दर्भ में) भारतीय ज्ञानपरम्परा में वेदों का महत्व सर्वजनसमादृत है। वेदार्थ के क्लिष्ट होने के कारण अध्ययन सौकर्य हेतु षडङ्गों की रचना हुई उन वेदांगवाच्य षडङ्गों में व्याकरण अन्यतम है- मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।। महाभाष्य पर लिखी गई टीकासम्पदा के इतिहास में शिवरामेन्द्र सरस्वती द्वारा रचित `महाभाष्यरत्नप्रकाश` का आदरणीय स्थान है। इस शोधकार्य में शोधार्थी ने महाभाष्य की रत्नप्रकाश टीका का विशद अध्ययन करते हुए प्रदीप टीका को भी आलोड़ित किया है इस शोधकार्य के कुछ प्रसंग द्रष्टव्य हैं - उपदेशेजनुनासिक इत सूत्र के प्रसङ्ग में महाभाष्यकार का कथन है कि यहाँ भाववाची घञ् न मानकर करणवाची घञ् प्रत्यय जानना चाहिए जिससे उपदेशन शब्द से जो अर्थ सिद्ध होता है वही अर्थ उपदेश शब्द से सिद्ध हो जाएगा। परन्तु `अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्` सूत्र से करण में घञ् प्राप्त नहीं होता है क्योंकि परत्वात् `करणाधिकरणायोश्च` से ल्युट् प्राप्त होता है। `परत्वात्` पद को अधिक स्पष्ट करते हुए प्रदीपकार कहते हैं कि `परत्वेन बाधकत्वं लक्ष्यते। तेन अनवकाशत्वात् ल्युट् प्राप्नोतीत्यर्थः।` अर्थात् परत्व द्वारा अपवाद बाधक लक्षित होता है, अतः अपवादतया ल्युट् प्राप्त होता है। इस विषय में रत्नप्रकाशकार एवं प्रदीपकार में मतविभेद दृष्टिगोचर होता है। प्रदीपकार `करणाधिकरणयोश्च` सूत्र को `अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्` सूत्र का अपवाद स्वीकार करते हैं। रत्नप्रकाशकार `करणाधिकरणयोश्च` विधि को उत्सर्गविधि मानते हैं। रत्नप्रकाशकार का मानना है कि नपुंसकलिङ्गवर्ती करणकारक में ल्युट् विधि सावकाश है। लिङ्गानुशासन के `घञबन्तः` सूत्रानुसार घञ् प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं अतः `अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्` का विषय पुल्लिङ्ग है अतः पृथग् - पृथग् विषय होने से प्रकृत सूत्र उत्सर्गापवाद नहीं होते। इस प्रमाण द्वारा प्रदीपकार का `परत्वेन बाधकत्वं लक्ष्यते। `तेन अनवकाशत्वात् ल्युट् प्राप्नोति` कथन भी खण्डित होता है, क्योंकि पर शब्द अपवाद अर्थ वाला है; इस विषय में प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। अतः `परत्वात्` शब्द का अर्थ परवर्ती (पश्चाद्वर्ती) ही लेना चाहिए। अतः अपवादतया नहीं अपितु परवर्ती होने के कारण ल्युट् प्राप्त होता है।

`पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानाम् उत्तरोत्तरं बलीयः` के अनुसार पूर्वापेक्षया पर बलवान् होता है। प्रायः पद किससे सम्बन्धित हो, इस प्रसङ्ग पर चर्चा करते हुए प्रदीपकार कहते हैं कि `प्रत्ययस्य विधेयत्वात् प्राधान्यात् प्रायग्रहणं प्रत्ययेनैव संबन्ध्यते, न तु गुणेन संज्ञयेत्यर्थः। विधीयमान होने के कारण प्रत्यय का प्राधान्य है अतः प्रायः ग्रहण भी प्रधानभूत प्रत्यय के साथ संयुक्त होगा, गुणभूत संज्ञा के साथ नहीं। इस प्रकार प्रदीपकार विधेय घञ् की प्रधानता स्वीकारते हैं। आचार्य शिवरामेन्द्र सरस्वती प्रदीपकार के मत को खण्डित करते हुए कहते हैं कि सभी कारकों का अन्वय क्रिया में होता है। यह वैयाकरणों का प्रसिद्ध सिद्धान्त है। इस सिद्धान्तानुसार प्रायग्रहण प्रत्ययकर्तृक भूत क्रिया के साथ होगा अर्थात् घञ् प्रत्ययकर्तृक `भवति` इत्यादि क्रिया के साथ होगा। इस कथन से विधीयमान प्राधान्यभूत प्रत्यय के साथ प्रायग्रहण होगा, इस बात का खण्डन हो जाता है। रत्नप्रकाशकार का मन्तव्य है कि विधेय प्राधान्य होता है एवं प्रकृत प्रसङ्ग में गुणविशेषण के असम्बन्ध का कोई प्रमाण नहीं है।

विषय सूची

1. धातुसंज्ञाविचार 2. इत्संज्ञा, लोप, यथासंख्य तथा स्वरितत्वधिकार सूत्र विचार 3. आत्मनेपदप्रकरण विचार 4. परस्मैपदप्रकरण विचार 5. आकडारादेका संज्ञासूत्र तथाविप्रतिषेधेपरं कार्यम् सूत्र विचार 6. नदीसंज्ञा, घिसंज्ञा तथा अंगसंज्ञासूत्र विचार 7. पदसंज्ञा, भसंज्ञा तथा बहुषु बहुवचनम् सूत्रविचार। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

05. आर्या (सुशीला)

पाणिनीय व्याकरण में संज्ञा तथा परिभाषाओं की व्यवस्था और व्याकरण के लाघव में उनका योगदान।

निर्देशिक : प्रो. सत्यपाल सिंह एवं प्रो. सुभाष चन्द्र एवं धनन्जय कुमार आचार्य
Th 28154

सारांश

पाणिनि ने लाघव और दोष रहित भाषा-विवेचन के लिए अपने व्याकरण में अनेक नवीन तकनीकों का और नवीन युक्तियों का प्रयोग किया है। लोक में प्रचलित संस्कृत भाषा की संरचना वाक्यात्मक होने से और विषय के व्याख्यान के लिए आवृत्तिमूलक होने से पाणिनि के मूलभूत उद्देश्य लाघव को पूरा करने में समर्थ नहीं थी। अतः उन्होंने एक सर्वथा नवीन कृत्रिम भाषा का विकास किया, जिसका मूल ढाँचा संस्कृत से लिया गया था। इसीलिए प्रायः देखा जाता है कि अष्टाध्यायी की भाषा संस्कृत न होकर संस्कृतमूलक एक नवीन भाषा है। जिसे Meta Language या शास्त्राीय भाषा कहा जा सकता है। इसी भाषा का प्रयोग अष्टाध्यायी की सूत्रा संरचना में किया गया है। इनकी इसी शास्त्रीय भाषा के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को यहाँ

निदर्शन के लिए उपस्थापित किया जा रहा है - (1) सूत्रशैली का प्रयोग - जो न गद्यात्मक है, न पद्यात्मक है और न चम्पूरूप है, अपितु नितान्त नवीन शैली है। (2) वर्णमाला का परिवर्तित वर्णानुक्रम - पाणिनि ने वर्णमाला के क्रम को भी परिवर्तित किया। जो वर्णमाला का वर्गीयक्रम था उच्चारण स्थान पर आधारित था - 'क, ख, ग, घ, ङ' आदि सारे कण्ठ्य वर्ण एक साथ थे, अब पाणिनि ने उस क्रम को परिवर्तित करके अ इ उण्, ऋलृक्, हयवरट्, लण् इत्यादि को बाह्य प्रयत्न आधारित क्रम में निर्धारित कर दिया और जबगडदश्, खफछठथचटतव्, ये सारे के सारे वर्ण संवार, नाद, घोष, विवार, श्वास, अघोष को जो जिसके समीप हैं, उसको उस क्रम में रखा। अतः ये एक नवीन परिवर्तित क्रम है।

विषय सूची

1. पाणिनी की शास्त्रीय भाषा का अत्यंत संक्षिप्त परिचय 2. विविध आधारों पर संज्ञाओं का वर्गीकरण 3. पाणिनीय व्याकरण के विविध पक्षों के लाघव में संज्ञाओं का योगदान 4. पाणिनीय व्याकरण में परिभाषाएँ और लाघव में उनका योगदान । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

06. काशीराम

आधुनिक संस्कृत उपन्यास साहित्य में लोक जीवन।

निर्देशिका : प्रो. रमा सिंह एवं प्रो. मीरा द्विवेदी एवं वेद प्रकाश डिंडोरिया

Th 28760

सारांश

संस्कृत का काव्य-साहित्य गरिमा और मधुरिमा की अगाध निधि है।आधुनिक युग में साहित्य के नवीन रूप से अनुप्रमाणित कथा में साहित्य में गद्य की एक नवीन शैली का विकास हुआ है। जिसे अंग्रेजी में `नॉवेल` हिन्दी तथा संस्कृत में `उपन्यास` नाम से अभिहीत किया गया है। जो इस शोध को और आगे ले जाता हैं इस प्रकार इस शोध प्रबन्ध के प्रयेक अध्याय का उल्लेख संक्षिप्त रूप से किया जा रहा हैं । प्रथम अध्याय इस अध्याय में लोक साहित्य क्या हैं इसका विवेचन किया गया हैंतथालोक साहित्यकीपरिभाषाएवंउद्देश्यकाविवेचन किया गया हैं इस अध्याय में लोकशब्द की अवधारणा, लोकसाहित्य का अर्थ और परिभाषा लोकसाहित्य कास्वरूप एवं महत्वलोक साहित्यकालोकजीवनस्वरूप का विवेचन किया गया हैं द्वितीय अध्याय इस अध्याय में संस्कृत उपन्यास साहित्य का स्वरूप एवं गद्य साहित्य के स्वरूप का विवेचन किया गया हैं, सर्वप्रथम संस्कृत उपन्यास क्या हैं,इसकी परिभाषा फिर गद्य साहित्य के भेद स्वरूप के आधार पर, और बन्ध के आधार पर अन्त में उपन्यास साहित्य के क्या तत्व हैं इसका विवेचन देखने को मिलता हैं। तृतीय अध्याय इस अध्याय में सबसे पहलें आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास उल्लेखित किया गया हैं फिर आधुनिक संस्कृत उपन्यासकारों का सामान्य जीवन परिचय १७वीं

शाताब्दी से आज तक लगभग ६० उपन्यासकारों का जीवन परिचय और उनके द्वारा वर्णित संस्कृत गद्य साहित्य के योगदान को दिखाया गया हैं, चतुर्थ अध्याय इस अध्याय में उपन्यास साहित्य में उल्लेखित लोक जीवन का स्वरूप क्या हैं इसका वर्णन किया गया हैं जिसमें सामाजिक लोक जीवन का स्वरूप और सांस्कृतिक लोक जीवन का स्वरूप का वर्णन इसके बाद ऐतिहासिक लोक जीवन के स्वरूप का विवेचन देखा जाता हैं में प्रस्तुत किया गया हैं। पञ्चम अध्याय इस अध्याय में आधुनिक संस्कृत के सांस्कृतिक भाव पक्षः और कला पक्षः के स्वरूप का विवेचन किया, अन्त मे संस्कृत उपन्यासों से सामाज को क्या प्रदेय ज्ञान प्राप्त होता हैं इसका भी वर्णन इस अध्याय में किया गया हैं। षष्ट अध्याय इस अध्याय संस्कृत उपन्यासों में किया गया हैं, इसमें क जीवन का स्वरूप क्या हैं उसके बाद सांस्कृतिक मूल्य परक लोकजीवनकी समीक्षाकाउल्लेखकिया गया हैं जिसमें रहन सहन लोक रीति रिवाज परम्परा लोक प्रथायें आदि का वर्णन देखा जाता हैं, और फिर आर्थिक संवेदना परक लोक जीवन की समीक्षा का उल्लेख किया गया हैं जिसमे उपन्यासों के द्वारा वर्णन किया गया हैं कि आयत निर्यात कृषि व्यापार ,वस्त्र आदि द्वारा धन का कैसे संचय किया जायें करें आदि वर्णन किया गया हैं उसके बाद धार्मिक संवेदना परक लोक जीवन इसका विवेचन किया गया हैं और किस धर्म का सामाज पर अधिपत्य था किस धर्म के राजा शासन पर अधिपत्य हो जाता था इसका विवेचन किया गया हैं अन्त में लोक जीवन की संवेदना की समीक्षा का वर्णन किया गया हैं जिसमें यह दिखाया गया हैं कि लोक जीवन मे राज्य के नियम कैसे थे और इसका वर्णन इस अध्याय में किया गया हैं यह सब बाते सब पर लागू होती हैं चाहे वह राजा हो या रंक इस प्रकार इस अध्याय का समापन होता हैं। अतःइस प्रकार “आधुनिक संस्कृत उपन्यास साहित्य में लोक जीवन”का मनन चिन्तन करने का अवसर मिला जिसका ज्ञान सफलतापूर्वक उपयोग करते हुए अपने इस शोध कार्य को पूर्ण किया हैं। ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःखभागभवेत् ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

विषय सूची

1. लोक एवं लोक साहित्य की परिभाषा एवं उद्देश्य 2. संस्कृत उपन्यास का स्वरूप एवं गद्यसाहित्य का परिचय 3. आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य एवं उपन्यासकारों का परिचय तथा मुख्य संस्कृत उपन्यास एवं उनके लेखक क्रमशः 4. संस्कृत उपन्यास साहित्य में लोक जीवन का स्वरूप 5. आधुनिक संस्कृत उपन्यासों में भाव प़ा एवं कला पक्ष के स्वरूप का विवेचा एवं उपन्यासों से सामाज को प्रदेय ज्ञान 6. संस्कृत उपन्यासों में तत्कालिक लोक जीवन की समीक्षा। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

7. चौधरी (दिशा)
न्याय दर्शन में उपाधि : सिद्धान्त एवं प्रयोग।
निर्देशिका : प्रो. अनीता राजपाल
Th 28761

सारांश

अनुमान में उपाधि प्राचीन न्याय - वाचस्पति मिश्र आदि नैयायिक अनौपाधिक संबंध को व्याप्ति कहते हैं। उपाधि का अर्थ हैं जो साध्य के साथ सदैव रहें, किन्तु साधन के साथ न रहें। "साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः" अर्थात् जो साध्य में व्यापक हो किन्तु साधन में व्यापक न हो उसे उपाधि कहते हैं, जैसे धुएँ के साथ अग्नि सब जगह पाई जाती है किन्तु अग्नि के साथ सब जगह धुआँ नहीं मिलता, क्योंकि अग्नि के साथ धुएँ का मिलना आर्द्रन्धनसंयोग पर निर्भर है, इसे ही उपाधि कहते हैं। धूम के साथ अग्नि के संबंध को व्याप्ति कहते हैं। स्वाभाविक संबंध को व्याप्ति कहते हैं। क्योंकि जब अग्नि के साथ गीली लकड़ी का संयोग होगा तभी धुएँ की उत्पत्ति होगी। नव्य न्याय आचार्य विश्वनाथ के अनुसार व्याप्ति दो प्रकार की है-(1) स्वाभाविकी व्याप्ति (ii) औपाधिक व्याप्ति (1) स्वाभाविकी व्याप्ति- जहाँ हेतु और साध्य का साहचर्यसम्बन्ध स्वागाविक होता है वहां इनकी व्याप्ति भी स्वभाविक होती है। जैसे- यत्र-यत्र भूमः तत्र-तत्र अग्नि, यत्र यत्र अग्निर्वास्ति तत्र-तत्र धूमोऽपि नास्ति। (ii) औपाधिक व्याप्ति जहाँ पर साध्य और हेतु का संबंध स्वभानिक होकर उपाधिवशात् हो वहाँ औपाधिकी व्याप्ति होती हैं। जैसे यत्रवस मैत्रीतनयत्वं तत्र-तत्र श्यामत्वं, यत्र यत्र श्यामत्वं नास्ति चत्र-तत्र मैत्रीतन्यत्वमपि नास्ति । इस उदाहरण में साध्य मैत्रीतनयत्व का हेतु श्यामत्व के साथ जो सम्बन्ध हैं वह शाकादि आहार रूप उपाधि से जन्य होने के कारण औपाधिक हैं। अतः इनकी व्याप्ति औपाधिकी है। औपाधिक व्याप्ति के ज्ञान से अनुमिति नहीं होती है।

विषय सूची

1. न्याय दर्शन में प्रमाण 2. अनुमान प्रमाण एवं अनुमान के अवयव 3. न्याय दर्शन में उपाधि 4. अन्य दर्शनों में उपाधि के सिद्धन्त एवं प्रयोग। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

08. CHUEACHIT (Phramaha Niran)
The Influence of Kātantravyākaraṇa on Pāli Grammatical Texts: A Critical Study
Supervisors : Prof. Om Nath Bimli & Prof. Balram Shukla
Th 28175

Abstract

This thesis investigates the influence of the Kātantravyākaraṇa, a Sanskrit grammatical treatise, on Pāli grammar, focusing on the Kaccāyanavyākaraṇa. Here, “influence” denotes transmission, adaptation, and selective innovation within Buddhist scholasticism. The study examines the extent to which Kātantra models appear in Pāli, the channels of their transmission, and the ways they were reconfigured for Pāli usage. Methodologically, a four group typology based on vocabulary and method is developed and applied to four domains: Sandhi, Nāma, Ākhyāta, and Kṛt (Kita). The analysis compares 673 Kaccāyana suttas with 1,401 Kātantra sūtras. Each Kaccāyana item is classified, and parallel tables align wording, procedure, scope, and examples, converting anecdotal similarities into systematic comparisons. The study identifies 291 correspondences: 33 with identical vocabulary and methods, 164 with similar vocabulary but different methods, 9 with different vocabulary but identical methods, and 85 with different vocabulary yet similar methods. Matches cluster most in Nāma, followed by Ākhyāta, Kṛt or Kita, and Sandhi. The evidence indicates sustained Sanskritic influence on terminology, alongside deliberate procedural adaptations suited to Pāli phonology and morphology. Close readings show that Pāli grammarians preserved pedagogically effective structures while modifying procedures for linguistic appropriateness. This research provides a reproducible framework for mapping intertextual relations between the Sanskrit and Pāli grammatical traditions. It argues that Kaccāyana is not a mechanical reproduction of Sanskrit sources but an original, pedagogically oriented reworking that selects, reframes, and systematizes inherited material. Practical implications include protocols for citing parallels, controlling for edition differences, and using paired examples in teaching. Limitations concern comparability across editions and corpus coverage. Future research is encouraged on transmission routes, commentary stratification, category specific change over time, and computational alignment of rules and examples. The study integrates historical context, textual architecture, and the comparative method, and systematically traces Kaccāyana‟s influence on other Pāli grammatical traditions in greater detail. Keywords: Kātantra; Kaccāyana; Pāli grammar; comparative grammar; typology; intertextuality; influence; transmission; adaptation.

Contents

1. Historical And Conceptual Foundations Of The Kātantra And Pāli Grammatical Traditions 2. History And Development Of Kātantra-Vyākaraṇa 3. History And Development Of Pāli Grammar 4. Critical Reflections On Identical Or Similar Vocabulary And Identical Or Different Methods 5. Critical Reflections On Different Vocabulary And Identical Or Similar Methods 6. Comprehensive Discussion And Implications: The Influence Of The Kātantravyākaraṇa On Kaccāyana-Vyākaraṇa 7. Conclusion And Discussion. Bibliography. Appendixes.

09. जीयाल (रीता)

ब्रहम सूत्र शंकर भाष्य में श्रुति स्मृति एवं प्रमाणों का विवेचन।

निर्देशिका : डॉ. मोनिका कुमार राठौर

Th 28156

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध ब्रह्म सूत्र शंकर भाष्य में श्रुति स्मृति एवं प्रमाणों का विवेचन इस शोध प्रबंध को चार अध्यायों में विभक्त किया गया है प्रथम अध्याय है आचार्य शंकर की दृष्टि में प्रमाणों का स्वरूप इस अध्याय में प्रमाणों का स्वरूप बताते हुए प्रमाणों की संख्या तथा प्रत्यक्ष अनुमान शब्द इत्यादि प्रमाणों का विस्तृत विवेचन किया गया है द्वितीय अध्याय है ब्रह्म सूत्र शंकर भाष्य में श्रुति प्रमाण इस अध्याय के अंतर्गत श्रुति प्रमाण का स्वरूप बताते हुए पूर्व पक्ष की स्थापना उत्तर पक्ष की स्थापना तथा अन्य आचार्य के द्वारा श्रुति प्रमाण को बताते हुवे आचार्य शंकर द्वारा उनका खंडन ।

विषय सूची

1. आचार्य शंकर की दृष्टि में प्रमाणें का स्वरूप 2. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य में श्रुति प्रमाण 3. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य में स्मृति प्रमाण 4. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य में अनुभव प्रमाण का स्वरूप। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

10. झा (मयूरी)

काव्यप्रकाश एवं काव्यपरीक्षा का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. रंजन कुमार त्रिपाठी, प्रो. सुचित्रा भारती, प्रो. दया शंकर तिवारी एवं प्रो. वेद प्रकाश डिंडोरीया

<u>Th 28157</u>

सारांश

काव्यप्रकाश एवं काव्यपरीक्षा का तुलनात्मक अध्ययन" अर्थात् "काव्यप्रकाश" तथा "काव्यपरीक्षा" का यह तुलनात्मक अध्ययन इस मूल उपकल्पना पर आधारित है कि इन दोनों ग्रन्थों में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, ध्वनि, अलंकार तथा दोष आदि काव्यतत्त्वों का सम्यक् विवेचन उनके भेद-प्रभेदों सहित विद्यमान है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में यह स्पष्ट किया गया है कि आचार्य मम्मट के अनन्तर काव्यपरीक्षाकार ने मुख्यतः उनकी शैली का अनुसरण करते हुए ध्वनिवादी परम्परा के द्वितीय प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विशद् निरूपण किया है। काव्यपरीक्षा की विशेषता नवीन तथ्यों की मौलिक उद्भावना में न होकर अपितु मम्मट द्वारा प्रतिपादित विषयवस्तु के युक्तिसंगत परिष्कार तथा सुनियोजित प्रस्तुति में परिलक्षित होती है। 'काव्यप्रकाश' एवं 'काव्यपरीक्षा' के विविध स्थलों पर आचार्य मम्मट एवं श्रीवत्सलाञ्छन भट्टाचार्य की पाण्डित्य-प्रतिभा एवं मौलिक दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है, जो संस्कृत काव्यशास्त्र के विकास में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

विषय सूची

1. काव्यप्रयोजन, काव्यलक्षण, काव्यहेतु एवं काव्यभेद विमर्श 2. शब्दार्थ एवं शब्दशक्तिविमर्श 3. ध्वनिविमर्श 4. दोष विमर्श 5. अलंकार निरूपण। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

11. तिवारी (गणेश)

प्राकृत भाषाओं में पुनःप्राकृतीकरण की प्रवृत्ति : एक ध्वनिवैज्ञानिक अध्ययन ।

निर्देशक : डॉ. उमाशंकर एवं डॉ. सुमिता त्रिपाठी

Th 28158

सारांश

This research presents a comprehensive phonological analysis of the phenomenon of re-prakritization (punah-prakṛtīkaraṇa) in Prakrit languages. As an important stage in the linguistic evolution of Indo-Aryan, the Prakrits exhibit a wide range of sound changes that emerged during the transition from Sanskrit to Apabhraṃśa and subsequently to the modern Indo-Aryan languages. Within this developmental trajectory, the processes of prakritization and re-prakritization hold particular significance. The first chapter establishes the conceptual and theoretical foundations of these processes, highlighting the natural tendencies of sound simplification and phonological restructuring in Prakrit languages. The second chapter focuses on vowel-based re-prakritization, examining phenomena such as vowel shortening and lengthening, elision, strengthening, coalescence, and positional variations. These patterns demonstrate that vowel changes in Prakrit are governed not only by phonetic simplification but also by grammatical and contextual influences. The third chapter investigates consonantal re-prakritization, analyzing transformations involving aspirated and non-aspirated pairs, class and non-class consonants, simplification of consonant clusters, and alternations of sibilants (ś/ṣ/s). Through textual evidence, this chapter shows that consonantal re-prakritization is central to the structural identity of Prakrit phonology. The fourth chapter examines free variants (muktavikalpita dhvanis) found in Sanskrit-derived Prakrit words. It studies variant readings, optional phonetic forms, and the phonological diversity preserved in various Prakrit texts. This demonstrates that re-prakritization often emerges from the coexistence of multiple phonetic possibilities within lexical items. The fifth chapter offers a comparative analysis of re-prakritization in Prakrit and other Indo-Aryan languages, including Hindi, Marathi, Gujarati, and Apabhraṃśa. The findings reveal that re-prakritization is not merely a historical phenomenon but an ongoing linguistic tendency observable across different stages of language development. Overall, this study brings a fresh perspective to the phonological development of the Prakrits and strengthens the theoretical understanding of re-prakritization within Indian linguistics.

विषय सूची

1.प्राकृतीकरण एवं पुनः प्राकृतीकरण 2. स्वरवर्णगत पुनःप्राकृतीकरण 3. व्यज्जनवर्णगतःप्राकृतीकरण 4. संस्कृत से आगत प्राकृत शब्दों मे मुक्तविकल्पित ध्वनियों का पुनःप्राकृतीकरण 5. प्राकृत तथा अन्य भाषाओं में पुनरूप्राकृतीकरण का तुलनात्मक विश्लेषण । निष्कर्ष। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

12. दीपशिखा

रामायण के सुन्दरकाण्ड में प्रयुक्त उपसर्ग, निपात एवं क्रियापदों का अनुशीलन ।

निर्देशिका : डॉ. सुशील कुमारी, प्रो. प्रेरणा मल्होत्रा, प्रो. ओमनाथ बिमली एवं प्रो. धन्नजय कुमार आचार्य

Th 28160

सारांश

स्तुत शोधप्रबन्ध 'रामायण के सुन्दरकाण्ड में प्रयुक्त उपसर्ग, निपात एवं क्रियापदों का अनुशीलन' को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। इन अध्यायों में क्रमशः उपसर्ग, निपातों तथा क्रियापदों के विषय में विस्तृत विवेचन कर इनके स्वरूप तथा कालक्रम में हुए परिवर्तन को समझने का प्रयास किया गया है। सभी अध्यायों में विषय का प्रतिपादन विभिन्न आचार्यों के मतों तथा व्याकरणों को दृष्टिगत रखकर करने का प्रयास किया गया है। विषय प्रतिपादन के उपरान्त रामायण के सुन्दरकाण्ड में प्रयुक्त तत्तद्विषयक उदाहरणों से नियमों तथा अपवादों की प्रतिपुष्टि करने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का अध्याय विभाजन निम्न है - प्रथम अध्याय - इस अध्याय में आदिकाव्य रामायण का परिचय, आदिकवि महर्षि वाल्मीकि का परिचय, रामायण का आदिकाव्यत्व, रामायण का रचनाकाल, रामायण के विभिन्न उपजीव्यों तथा विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृतियों में रामायण के अनुवाद तथा कहानियों आदि विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। द्वितीय अध्याय - शोधप्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में उपसर्ग सम्बन्धी विवेचना की गई है। इस अध्याय में उपसर्ग सम्बन्धी विभिन्न आचार्यों के मतों का प्रतिपादन किया गया है। उपसर्गों की आचार्य यास्क, आचार्य पाणिनी तथा अन्य प्रमुख आचार्यों की परिभाषाओं तथा सूत्र-ग्रंथियों को सरल करने की चेष्टा इस अध्याय में की गई है। तदुपरान्त सभी उपसर्गों का पृथक्-पृथक अर्थ विवेचन कर उस उपसर्ग के रामायण के सुन्दरकाण्ड में प्रयुक्त उदाहरणों का निदर्शन किया गया है। तृतीय अध्याय - तृतीय अध्याय में यास्क प्रणीत निरुक्त में वर्णित नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात में से निपात के विषय में चर्चा की गई है। इस अध्याय में सर्वप्रथम निपात के लक्षणों का वर्णन करने के उपरान्त उपमार्थक, अर्थोपसंग्रहार्थक तथा पादपूरक इन निपात के तीन भेदों का विवेचन विस्तार पूर्वक किया गया है। तदनन्तर सभी निपातों का पृथक्-पृथक अर्थ विवेचन कर उस उस निपात के रामायण के सुन्दरकाण्ड में प्रयुक्त उदाहरणों का विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय - इस अध्याय में तिङ्गन्त क्रियापदों का विवेचन किया गया है । क्रियापदों के विभिन्न प्रत्ययों, स्वरूपों तथा अपवादों का वर्णन करने के उपरान्त रामायण के सुन्दरकाण्ड में प्रयुक्त उदाहरणों का निदर्शन किया गया है। पञ्चम अध्याय - पञ्चम अध्याय में कृदन्त क्रियापदों का विवेचन किया गया है, जिसके अन्तर्गत कृत प्रत्यय, कृत्य प्रत्यय तथा उत्तर कृदन्त प्रत्ययों के स्वरूप को

स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। तदुपरान्त सभी उपसर्गों का पृथक्-पृथक अर्थ विवेचन कर उस उपसर्ग के रामायण के सुन्दरकाण्ड में प्रयुक्त उदाहरणों का निदर्शन किया गया है। इस प्रकार इस शोध-प्रबन्ध के पाँच अध्यायों में विषय को स्पष्टता व सरलता से बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है।

विषय सूची

1. सुन्दरकांड में उपसर्ग विवेचन 2. सुन्दरकांड में निपात विवेचन 3. सुन्दरकांड में तिङन्त विवेचन 4. सुन्दरकाण्ड में कृदन्त विवेचन। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

13. नवलकिशोर

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याः कृदन्तप्रकरणे सिद्धान्तरत्नाकरटीकायाः समीक्षात्मकमध्ययनम्।

निर्देशिका : डॉ. करूणा आर्या, डॉ. मोहिनी आर्या एवं डॉ. अजित कुमार
Th 28161

सारांश

अयं सिद्धान्तरत्नाकरः विदुषां मध्ये मणिरिव समुद्भासते। रामकृष्णभट्टस्य काशिकान्यासादिप्राचीनेषु ग्रन्थरत्नेषु तथा च प्रौढमनोरमाशब्दकौस्तुभादिषु ग्रन्थेषु अत्यधिकं सम्मानं श्रद्धा चासीत्। आचार्यः टीकायां पूर्ववर्तिनामाचार्याणामुल्लेखः कदाचित् नाम्ना सह तत्तदाचार्याणां मतानामपि उल्लेखं विदधाति। तिङन्तपदानां निरूपणानन्तरं कृत्यप्रत्ययस्य विश्लेषणं विधीयते। सिद्धान्तरत्नाकरे कृदन्तप्रकरणस्य सूत्राणां तर्कवितर्कपूर्वकं विवेचनं विहितं वर्तते। कौमुदीकारेण भट्टोजिदीक्षितेन सङ्क्षेपेण सूत्राणां व्याख्या विहिता, तत्र याः शङ्काः तिष्ठति, तासां निवारणाय टीकाग्रन्थानामुपयोगिता सर्वविदिता एवास्ति । यथा धातो अधिकारस्य आवश्यकतायां टीकाकारः कथयति यत् आर्धधातुकसञ्ज्ञायाः ये लाभाः भवन्ति, तदर्थं पृथक्धात्वधिकारस्य आवश्यकता भवति। टीकाकारस्य विशेषता वर्तते यत् उदाहरणसहितं विशिष्टप्रसङ्गानामधिगमं कारयति। एवमेव प्रकारेण तव्यत्तव्ययोः ग्रहणस्य किं प्रयोजनं वर्तते, किमर्थुभयोरेव ग्रहणमावश्यकं वर्तते? एतदुपर्यपि रत्नाकरकारः कथयति यत् स्वरे वैशिष्ट्यसम्पादनार्थं तव्यस्य तव्यतश्चावश्यकताऽस्ति। आश्चर्यमेतदस्ति यत् तत्त्वबोधिनीटीकायाः साम्यं सिद्धान्तरत्नाकरेण सह अत्यधिकं लभ्यते, अनेकानि सूत्राणि तु एतादृशानि सन्ति, यत्र उभयोः टीकयोः वाक्यानामपि अभेदत्वमस्ति। अनया टीकया सूत्रकारस्य अभिप्रायोऽपि सम्यक्तया ज्ञातुं शक्यते, यथा यत्प्रत्ययस्य प्रसङ्गे नञि उपपदे सति 'वद' धातोः यत्प्रत्ययस्य निपातनमित्यादिकार्याणि भवन्ति। परञ्च तत्र सूत्रे 'वृ' इत्यस्मात् कस्य धातोः ग्रहणं भविष्यति 'वृञ् वरणे' अथवा 'वृङ् सम्भक्तौ' इत्यस्य। अस्यापि समाधानं टीकाकारेण विस्तृतरूपेण विहितं यत् अस्मिन् सूत्रे 'वृङ् सम्भक्तौ' इत्यस्यैव धातोः ग्रहणं

विधास्यते। टीकाकारः महाभाष्यं निजादर्शरूपेण मन्यते, अत एव मध्ये-मध्ये महाभाष्यस्य उद्धरणमपि अनेन विदुषा प्रस्तूयते। कौमुद्यां सिद्धान्तानामर्थं विशदीकर्तुं भट्टश्रीरामकृष्णस्य महनीयं योगदानं वर्तते। अस्यैव शास्त्रपरम्परायाः संरक्षकस्य वैयाकरणप्रवरस्य भट्टश्रीरामकृष्णस्य कृदन्तप्रकरणे अवस्थितस्याः सिद्धान्तरत्नाकरटीकायाः समीक्षात्मकमध्ययनं शोधार्थिना विहितम्।

विषय सूची

1. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्या : टीकापरम्परा तत्र सिद्धान्तरत्नाकरह्व 2. कृत्यप्रकरणस्य समीक्षा 3. निष्ठापूर्वस्य पूर्वकृदन्तप्रकरणस्य समीक्षणम् 4. निष्ठोत्तरस्य पूर्वकृदन्तप्रकरणस्य समीक्षणम् 5. उत्तरकृदन्तप्रकरणस्य समीक्षणम्। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्टम्।

14. पैन्यूली (सुभाष)

वर्णसमाम्नायस्य भाषिकं दार्शनिकञ्च विश्लेषणम्, व्याकरणशास्त्रस्य काश्मीरशैवदर्शनस्य च सन्दर्भे

निर्देशक : प्रो. दयाशंकर तिवारी, प्रो. सत्यपाल सिंह एवं प्रो. श्रुतिराय

Th 28162

सारांश

"वर्णसमाम्नायस्य भाषिकं दार्शनिकञ्च विश्लेषणम्, व्याकरणशास्त्रस्य काश्मीरशैवदर्शनस्य च सन्दर्भे" इत्येनं विषयमाधायामुष्मिन् शोधकार्ये प्रवृत्तोऽस्मि। शोधप्रबन्धोऽयं पञ्चस्वध्यायेषु विभक्तः। तेषु प्रथमाऽध्याये तु व्याकरणशास्त्रकाश्मीरशैवदर्शनयोः स्वरूपमुद्भवश्च निरूप्यते। तत्पश्चाद् व्याकरणशास्त्रस्य येषामाचार्याणां ग्रन्थानामाश्रयोऽस्मिन् शोधप्रबन्धे स्वीक्रियते, तेषामाचार्याणां कालस्य, स्थानस्य, पारिवारिकजनानां, कृतीनां व्यक्तित्वानाञ्च साङ्गोपाङ्गरूपेण विश्लेषणं विधीयते। काश्मीरशैवदर्शनस्य किं स्वरूपम्, कदा प्रादुर्भूतम्, का परम्परा चेत्यादीनां विषयाणां प्रतिपादनमभिहितम्। काश्मीरशैवदर्शनस्य यान् ग्रन्थान् निधाय शोधप्रबन्धोऽयं लिखितः। तेषां ग्रन्थानामाचार्याणां च कालादीनाञ्चापि विस्तारपूर्वकं विश्लेषणं प्रस्तूयते। द्वितीयेऽध्याये वाचः स्वरूपस्य विश्लेषणं प्रतिपाद्यते। आदौ व्याकरणशास्त्रदृष्ट्या वाक्तत्त्वस्य स्वरूपस्य विश्लेषणं क्रियते। तत्र वाचश्चतुर्धा, पञ्चधा, सप्तधा च भेदाः मताः। अत एव काश्मीरशैवदर्शनदृष्ट्या एतेषामपि निरूपणं कृतम्। तत्पश्चाद् द्वयोः वाचः साम्यवैषम्यस्वरूपस्य ज्ञानाय तस्याः तुलनात्मकं विश्लेषणं प्रतिपादितम्। क्रमेण परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीचतुर्विधवाचां स्वरूपं निरूप्यते। तत्पश्चाद्भिन्नताऽभिन्नतावबोधनाय तुलनात्मकं विश्लेषणं प्रतिपाद्यते। तृतीयाध्याये वर्णानामभिव्यक्तेर्वर्णभेदानाञ्च विश्लेषणं विधीयते। तत्पश्चाद् अइउण्

इत्यादीनां चतुर्दशमाहेश्वरसूत्राणां व्याकरणशास्त्रदृष्ट्या साङ्गोपाङ्गरूपेण विश्लेषणं कृतम्। स्वरवर्णानाम्भेदोपभेदानां विस्तारपूर्वकं विश्लेषणं क्रियते। काश्मीरशैवदर्शने अनुत्तर-अवर्णाद् विसर्गपर्यन्तं षोडशबीजवर्णाः सन्ति। एतेषां सविस्तारं विश्लेषणं शोधप्रबन्धे विहितम्। तत्पश्चात् तुलनात्मकं विश्लेषणं क्रियते। स्वरवर्णानां विश्लेषणस्यानन्तरं व्यञ्जनवर्णानां विश्लेषणं निरूप्यते। आदौ व्याकरणशास्त्रदृष्ट्या व्यञ्जनवर्णानां विवेचनं साङ्गोपाङ्गरूपेण क्रियते। अनुत्तरपरामर्शेन निष्पन्नो यद्व्यञ्जनसमुदायोऽस्ति, तद् योनिरूपं विद्यते। काश्मीरशैवदर्शनदृष्ट्या योनिसञ्ज्ञकवर्णानां सविस्तारं विश्लेषणं विधीयते। तत्पश्चाद् तेषां व्यञ्जनवर्णानां तुलनात्मकं विश्लेषणं क्रियते। चतुर्थाऽध्याये वर्णसमाम्नायस्य भाषिकं विश्लेषणं क्रियते। तत्र वर्णानां अत एव चतुर्थाध्याये वर्णसामाम्नायस्य भाषिकविवेचने सर्वप्रथमं वर्णानामुच्चारणप्रक्रियायाः विश्लेषणं प्रतिपाद्यते। तत्पश्चात् ताल्वादीनां वर्णानामुच्चारणस्थानानां विवेचनं क्रियते। तदनन्तरं वर्णानां प्रयत्नस्य निरूपणे स्पृष्टादीनामाभ्यान्तरप्रयत्नानां तथा संवारादीनांबाह्यप्रयत्नानां विश्लेषणं विधीयते। वर्णसमाम्नायस्य व्याकरणिकशास्त्रीयप्रक्रियायामुपयोगितायाः विश्लेषणमपि विहितम्। चतुर्थाऽध्यायस्यान्ते वर्णसमाम्नायस्य लौकिकव्यवहारे कथम् उपयोगिता विद्यते तस्य विश्लेषणं कृतम्। पञ्चमाऽध्याये वर्णसमाम्नायस्य दार्शनिकं विश्लेषणं क्रियते। तत्रादौ स्फोटस्य विश्लेषणं प्रतिपाद्यते। अष्टसु स्फोटेषु वर्णस्फोटस्य किं स्वरूपमस्ति तद् व्याकरणशास्त्रदृष्ट्या वर्णस्फोटस्य विश्लेशषणमभिहितम्। तत्रैव जातिवर्णस्फोटं व्यक्तिवर्णस्फोटं चापि विवेचितम्। तत्पश्चात् नन्दिकेश्वरकाशिकादृष्ट्या चतुर्दशमाहेश्वरसूत्राणां दार्शनिकं निरूपणं साङ्गोपाङ्गरूपेण कृतमिति। तत्पश्चाद् वर्णानां शक्तयः प्रतिपाद्यन्ते, तथा चान्ते काश्मीरशैवदर्शनदृष्ट्या वर्णानां शिवशक्तिमयत्वं निरूपितमिति।

विषय सूची

1. व्याकरणशास्त्रकाशमीरशैवदर्शनयोः स्वरूपमुच्वह्ग 2. वाक्तत्वस्य स्वरूपस्य विश्लेषणम् 3. वर्णनामभिव्यक्तेर्वर्णभेदानान्च विश्लेषणम् 4. वर्णसमान्मायस्य भाषिकं विश्लेषणम् 5. वर्णसमान्मायस्य दार्शनिकं विश्लेषणम्। उपसंहार। सन्दर्भग्रंथसूची।

15. प्रियांशी

प्रकाशवर्षकृत गणपाठविवृत्ति का सम्पादन एवं अनुशीलन ।

निर्देशक : डॉ. ब्रह्मप्रकाश

Th 28163

सारांश

पंचांगी व्याकरण में गणपाठ का महत्वपूर्ण स्थान है। `गण संख्याने` धातु से गण शब्द की निष्पत्ति होती है। अतः गणों का= क्रम विशेष से पढ़े गए शब्द समूहों का जिस ग्रंथ में संकलन होता है,उसे गणपाठ कहते हैं। आचार्य प्रकाशवर्ष द्वारा विरचित `गणपाठविवृत्ति` पाण्डुलिपियों में उपलब्ध अप्रकाशित प्राचीन ग्रंथ है। `गणपाठविवृत्ति` में पाणिनिय गणपाठ का छंदोबद्ध संग्रह किया गया है। विवृत्ति की अन्वर्थता के लिए गणशब्दों की व्याख्या भी कहीं कहीं मिलती है। पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने गणपाठविवृत्ति का समय 1200 विक्रम संवत् माना है। आचार्य मल्लिनाथ ने न्यासोद्योत टीका में आचार्य प्रकाशवर्ष को उद्धरित किया है। अतः ये मल्लिनाथ से प्राचीन है। इस ग्रंथ के हस्तलेख शारदा लिपि में होने से संभव है कि ग्रन्थ कर्त्ता कश्मीर निवासी थे। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रकाशवर्षकृत गणपाठविवृत्ति के सम्पादन के साथ-साथ गणपाठगत शब्दों का भी विवेचन किया गया है।

विषय सूची

1. प्रथमाध्यायान्तर्गत गणपाठविवृत्ति का स्म्पादन एवं गणपाठगत शब्दों का विवेचन 2. द्वितीयाध्यायान्तर्गत गणपाठविवृत्ति का सम्पादन एवं गणपाठगत शब्दों का विवेचन 3. तृतीयाध्यायान्तर्गत गणपाठविवृत्ति का सम्पादन एवं गणपाठगत शब्दों का विवेचन 4. चतुर्थाध्याययन्तर्गत गणपाठवृत्ति का सम्पादन एवं गणपाठगत शब्दों का विवेचन 5. पंचमाध्यायान्तर्गत गणपाठविवृत्ति का सम्पादन एवं गणपाठगत शब्दों का विवेचन 6. षष्ठाध्यायन्तर्गात गणपाठविवृत्ति का सम्पादन एवं गणपाठगत शब्दों का विवेचन 7. सप्तमाध्यायान्तर्गत गणपाठविवृत्ति का सम्पादन एवं गणपाठगत शब्दों का विवेचन 8. अष्टमाध्यायान्तर्गत गणपाठविवृत्ति का सम्पादन एवं गणपाठगत शब्दों का विवेचन। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्ट।

16. भट्ट (पुष्कर)

संस्कृत धातुपाठों में समानानुपूर्वी धातुओं का भाषाशास्त्रीय अध्ययन ।

निर्देशक : डॉ. सोमवीर सिंघल

Th 28164

सारांश

प्रस्तुत शोध का शीर्षक “संस्कृतधातुपाठों में समानानुपूर्वी धातुओं का भाषाशास्त्रीय अध्ययन” है। इसको चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। अध्यायों से पूर्व भूमिका में सम्प्रति उपलब्ध 8 धातुपाठों एवं उनके प्रवक्ताओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। परिचय के साथ-साथ धातुपाठ एवं धातुपाठ परंपरा का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। प्रथम अध्याय में शीर्षक ‘समानानुपूर्वी धातुएं’ में धातुओं के

विभाग का विश्लेषण किया गया है एवं समानानुपूर्विता के कारण पर विचार किया गया है। साथ ही लकारों एवं गणों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसके उपरांत समानानुपूर्वी धातुओं की सूची प्रस्तुत की गई है। समानानुपूर्वी धातुओं के दो विभाग किए गये हैं- स्वरान्त एवं व्यञ्जनान्त। द्वितीय अध्याय शीर्षक 'सामानानुपूवी धातुओं का ध्वनि वैज्ञानिक विश्लेषण' को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा गया है - विकरणगत वैचित्र्य एवं अन्य विशेषताएं। विकरणगत वैचित्र्य में सार्वधातुक लकारों में धातुगत ध्वनि वैज्ञानिक विशेषण को प्रस्तुत किया गया है। 'अन्य विशेषताएं' नामक शीर्षक में आर्धधातुक लकारों में हुए धातुगत ध्वनि परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। 'तृतीय अध्याय में समानानुपूर्वी धातुओं का अर्थवैज्ञानिक विवेचन किया गया है। अर्थ विषय विवेचन को तीन उपभागों में विभाजित किया गया है प्रथम अर्थ विस्तार नामक भाग में उन समानुपूर्वी धातुओं का विवेचन किया गया है जिनमें अर्थविस्तार हुआ है। द्वितीय भाग अर्थ परिवर्तन में उन समानानुपूर्वी धातुओं का संग्रह किया गया है जिनमें अर्थगत परिवर्तन हुए हैं। अर्थगत परिवर्तन से तात्पर्य वे धातुएं धातुएं धातुपाठों में जिन अर्थों में पठित हैं उनसे इतर अर्थों में साहित्य में उनका प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। तृतीय भाग अर्थभेद में धातुपाठ में उल्लिखित अर्थभेदों को दर्शाया गया है। इस भाग में उन समानुपूर्वी धातुओं का संग्रह किया गया है, जिनको धातुपाठकारों ने भिन्न-भिन्न अर्थों में पाठ किया है। चतुर्थ अध्याय में 'शोध में प्रयुक्त पाणिनीय प्रयुक्त प्रविधियां का भाषा शास्त्रीय विवेचन' प्रस्तुत किया गया है। पाठ का प्रारंभ पाणिनि का एक भाषाशास्त्री के रूप में विवेचन किया गया है। तदुपरांत अष्टाध्यायी में पठित सूत्रों के प्रकरण क्रम की संगति एवं में सूत्रों की तत्तत् स्थान में संयोजन की प्रासंगिकता का विवेचन किया गया है। इसके उपरांत भाषाशास्त्रीय दृष्टि से ध्वनिगत परिवर्तनों का भाषाशास्त्री दृष्टि से विचार किया गया है। इन्हें परिवर्तनों के अध्ययन के प्रसंग में पाणिनि प्रयुक्त प्रविधियों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन नाम के माध्यम से विवेचन किया गया है।

विषय सूची

1. समानानुपूर्वी धातुएं 2. समानानुपूर्वा धातुओं का ध्वनिवैज्ञानिक अध्ययन 3. समानानुपूर्वी धातुओं का अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन 4. शोधगत प्रयुक्त पाणिनीय प्रविधियों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथसूची।

17. ममता

कविवर मेधाव्रत की साहित्यिक कृतियों में पर्यावरण चेतना ।

निर्देशक : प्रो. विजय गर्ग एवं प्रो. भारतेन्दु पाण्डेय एवं प्रो. सरस्वती

Th 28165

सारांश

वातावरण में स्थित भौतिक (वायु, पर्वत, नदी, झरनें, सरोवर, तालाब इत्यादि) तथा जैविक (जीव जंतु, वृक्ष, वन इत्यादि) तत्वों का समिश्रण पर्यावरण का निर्माण करता है। सामान्य रूप से पर्यावरण का अर्थ मानव के संदर्भ में किया जाता है। मानव के चारों ओर सन्निहित तत्व पर्यावरण का निर्माण करते हैं। प्राचीनकाल से ही हमारे शास्त्रों में पर्यावरण संरक्षण की भावना विद्यमान रही है। हमारे ऋषि मुनियों ने प्राकृतिक तत्वों को देवत्व स्वरूप प्रदान करके पर्यावरणीय तत्वों के संरक्षण की भावना को प्रकट किया है। संस्कृत साहित्य में संस्कृत कवियों ने अपनी रचनाओं में यथास्थान पर्यावरणीय तत्वों के सौंदर्य को चित्रित करके पर्यावरण संरक्षण का संदेश समय समय पर सहृदयों को दिया है। इसी पर्यावरण संरक्षण की परंपरा में आधुनिक संस्कृत महाकवि मेधाव्रत का नाम भी सर्वोपरि आता है। महाकवि मेधाव्रत एक प्रकृति प्रेमी कवि हैं। उनकी सभी रचनाओं में प्रकृति के सौंदर्य की अलौकिक छवि दिखाई देती है। उनके द्वारा रचित 'प्रकृतिसौन्दर्यम्' नामक नाटक प्रकृति के अप्रतिम सौंदर्य को प्रकट करता है। कवि ने अपनी रचनाओं में पर्यावरणीय तत्वों के सौंदर्य को चित्रित करके पर्यावरण संरक्षण का संदेश पग पग पर भावी पीढ़ी को दिया है। मेरे द्वारा प्रस्तुत इस शोध प्रबंध में महाकवि मेधाव्रत की साहित्यिक कृतियों में चित्रित भौतिक तथा जैविक पर्यावरणीय तत्वों के सौंदर्य को वर्णित करके उनकी उपयोगिता को बताया गया है तथा इसके साथ-साथ शोध प्रबन्ध में विभिन्न ऋतुओं, विभिन्न कालों तथा सौरमंडलीय ग्रहों का पर्यावरण पर होने वाले प्रभावों को भी चित्रित किया गया है, जो वर्तमान में निरंतर बढते हुए प्रदूषण को नियंत्रित करने में सहायक है।

विषय सूची

1. पर्यावरण की अवधारणा और संस्कृत साहित्य 2. महाकवि मेधाव्रत के दृश्यकाव्यों में प्र्यावरण चेतना 3. महाकवि मेधाव्रत के श्रव्य पद्यकाव्यों में पर्यावरण चेतना 4. महाकवि मेधाव्रत के काव्यों में प्र्यावरण परिदृश्य। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथसूची।

18. ममता

कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित वार्ता : एक विवेचन ।

निर्देशिका : डॉ. मीना कुमारी एवं प्रो. रंजीत कुमार मिश्रा एवं डॉ. आशुतोष दयाल माथुर

Th 28166

सारांश

इस ग्रंथ में आचार्य कौटिल्य के व्यक्तित्व, कृतित्व, और उनके अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पहले अध्याय में चाणक्य के शासन और प्रशासन के

सिद्धांतों पर केंद्रित है, जहाँ उन्होंने धर्म, अर्थ, और काम के त्रिवर्ग के आधार पर आदर्श शासक के गुणों की व्याख्या की है। दूसरे अध्याय में कृषि नीति पर जोर दिया गया है, जिसमें आचार्य ने कृषि के आर्थिक महत्व, भूमि आवंटन, फसल चयन, और बीज गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया है। तीसरे अध्याय में पशुपालन के महत्व को रेखांकित किया गया है, जिसमें उन्होंने पशुओं की देखभाल, स्वास्थ्य, और प्रबंधन के प्रशासनिक पहलुओं को बताया है। ग्रंथ में यह स्पष्ट किया गया है कि आचार्य कौटिल्य का अर्थशास्त्र शासन, प्रशासन, कृषि, और पशुपालन में गहन ज्ञान प्रदान करता है, जो आज के राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक संदर्भ में भी प्रासंगिक है। आचार्य के विचार नीति-निर्माण और राष्ट्र की स्थिरता तथा समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, पाठ में व्यापार के ऐतिहासिक महत्व और राज्य के राजस्व में इसके योगदान पर भी चर्चा की गई है। आचार्य कौटिल्य ने कृषि, व्यापार, और उद्योग के सामंजस्यपूर्ण विकास को समाज के कल्याण और राज्य की शक्ति के लिए आवश्यक बताया है। इस ग्रंथ में प्राचीन भारतीय कृषि, पशुपालन, और व्यापार प्रणाली के सांस्कृतिक और आर्थिक महत्व को उजागर किया गया है, जो आज भी शासन और आर्थिक नीति के लिए मार्गदर्शक हैं।

विषय सूची

1. कौटिल्य का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 2. कृषि व्यवस्था 3. पशुपालन 4. विभिन्न व्यापार विद्या 5. व्यापार एव ंकर व्यवस्था । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

19. मिश्रा (विष्णु कुमार)

अद्वैत वेदान्त एवं साहित्यशास्त्र के रस सिद्धान्त में वर्णित आनन्द की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन।

निर्देशिक : प्रो. रंजन कुमार त्रिपाठी एवं प्रो. वेद प्रकाश डिंडोरिया एवं डॉ. अवधेश प्रताप सिंह
Th 28167

सारांश

यह शोधप्रबंध अद्वैत वेदांत और भारतीय साहित्यशास्त्र के रस-सिद्धांत में वर्णित `आनंद` की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अद्वैत वेदांत, जिसे शंकराचार्य ने अत्यंत संगठित रूप में प्रतिपादित किया, ब्रह्म को एकमात्र सत्य और जगत को मिथ्या मानता है। इस दर्शन में `आनंद` ब्रह्म का स्वभाव है–सच्चिदानंद। जब जीव आत्मा-ब्रह्म की एकता का बोध करता है, तब वह 'मोक्ष' रूपी परम आनंद को प्राप्त करता है। यह आनंद लौकिक सुख से परे, निर्विकल्प और शाश्वत होता है। दूसरी ओर, साहित्यशास्त्र विशेषतः भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और आचार्य अभिनवगुप्त के अभिनवभारती में प्रतिपादित रस-सिद्धांत में `रस` की अनुभूति को आनंद की चरम अवस्था माना गया है। रस, विशेषतः 'शृंगार', 'वीर', 'करुण' आदि, दर्शक या

पाठक में 'रसास्वादन' के माध्यम से एक प्रकार के अलौकिक आनंद की उत्पत्ति करते हैं। यह अनुभव व्यक्ति को क्षणिक रूप से आत्म-भान से परे ले जाता है–जिसे `रसानंद` कहा गया है। यह शोध सिद्ध करता है कि अद्वैत वेदांत का ब्रह्मानंद और साहित्यशास्त्र का रसानंद दोनों ही अनुभव-प्रधान, आत्माभिमुख और विश्व की पारंपरिक द्वैत चेतना को अतिक्रमित करने वाले हैं। दोनों में आनंद एक आध्यात्मिक या सूक्ष्म अनुभूति है जो लौकिक सुख-दुख के द्वंद्व से परे है। यह अध्ययन भारतीय ज्ञान-परंपरा की समन्वयात्मक दृष्टि को रेखांकित करता है और दिखाता है कि किस प्रकार दर्शन और काव्यशास्त्र दोनों में आनंद एक सार्वभौमिक सत्य का बोध कराने वाला तत्व बनकर उभरता है।

विषय सूची

1. भारतीय दर्शन में आनन्द विषयक अवधारणा 2. अद्वैत वेदान्त के विभिन्न ग्रथों में आनन्द विषयक अवधारणा 3. रसेतर सिद्धान्त में आनन्द विषयक अवधारणा 4. साहित्यशास्त्रीय विभिन्न ग्रन्थों में रस सिद्धान्त में वर्णित आनन्द विषयक 5. अद्वैत वेदान्त एवं साहित्यशास्त्र के रस सिद्धान्त में वर्णित आनन्द की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथसूची।

20. मिश्रा (राजेन्द्र प्रसाद)

अनन्तभट्ट-कृत चम्पूभारतम् की छन्दोऽलङ्कार-सम्पदा : एक समीक्षात्मक अध्ययन।

निर्देशिका : डॉ. आशा तिवारी एवं प्रो. सुषमा चौधरी एवं डॉ. ममता त्रिपाठी

Th 28168

सारांश

"अनन्तभट्ट-कृत चम्पूभारतम् की छन्दोऽलङ्कार-सम्पदा : एक समीक्षात्मक अध्ययन" प्रस्तुत शीर्षक को शोध-विषय के रूप में चुना गया है।जिसमें चम्पूभारतम् का अलङ्कार और छन्द की दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। शोध-प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में छन्दों का विस्तार से उल्लेख किया गया है तथा द्वितीय अध्याय से पञ्चम अध्याय पर्यन्त अलङ्कारों का विवेचन किया गया है। अध्यायों से पूर्व विषयप्रवेश में 'चम्पूकाव्य' और 'चम्पूभारतम्' का परिचय प्राप्त होता है। शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में चम्पूभारतम् में प्राप्त छन्दों का उल्लेख किया गया है, जिनमें मात्रिक और वर्णिक छन्दों का विवेचन है। द्वितीय अध्याय में चम्पूभारतम् में प्राप्त शब्दालङ्कारों अलङ्कारों को रखा गया है, जिनमें अनुप्रास, यमक, श्लेष का सांगोपाङ्ग विवेचन उपलब्ध है। तृतीय अध्याय में सादृश्यमूलक- उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, आदि अलङ्कारों का विशद वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में

विरोधमूलक- असङ्गति, विरोधाभास, विभावना, विषम, विचित्र, विशेष, सम एवं शृंखलामूलक-सार नामक अलङ्कार वर्णित हैं। पञ्चम अध्याय में न्यायमूलक एवं गूढार्थप्रतीतिमूलक अलङ्कार वर्णित हैं, जिनमें काव्यलिङ्ग,तद्गुण, प्रत्यनीक, परिसंख्या, अर्थापत्ति, संकर आदि अलङ्कार हैं। अन्त में उपसंहार, परिशिष्ट तथा सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची उपनिबद्ध है।

विषय सूची

1. चम्पू भारत की छन्द सम्पदा 2. चम्पूभारतम् में शब्दालंकार 3. चम्पूभारतम् में सादृश्यमूलक अर्थालंकार 4. चम्पूभारतम् में विरोधमूलक एवं शृंखलामूलक अर्थालंकार। उपसंहार। परिशिष्ट। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

21. संजय कुमार

क्षेमेन्द्र-कृत देशोपदेश एवं नर्ममाला: एक समीक्षात्मक अध्ययन।

निर्देशिका : डॉ. ममता त्रिपाठी एवं गिरीश चंद्र पंत एवं मैत्रेयी कुमारी

<u>Th 28169</u>

सारांश

प्रस्तुत शोध का विषय "क्षेमेन्द्र-कृत देशोपदेश एवं नर्ममाला: एक समीक्षात्मक अध्ययन" है । इस शोध प्रबंध का वास्तविक उद्देश्य क्षेमेंद्र काल मे भारतीय समाज और संस्कृति की समझ प्रदान करना है, इस शोध कार्य में देशोपदेश और नर्ममाला काव्यों का आलोचनात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है। तथा इन काव्यों में निहित तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है। तथा काव्य के साहित्यिक एवं सौन्दर्यात्मक पहलुओं का भी अध्ययन किया गया है। देशोपदेश एवं नर्ममाला काव्यों में वर्णित समाज में व्याप्त सामाजिक-धार्मिक आडम्बरों की आड़ में दूषित वर्गों द्वारा किस प्रकार समाज का शोषण किया जा रहा था, इसका प्रतिपादन किया गया है एवं समाज के दूषित पक्षों तथा विभिन्न शोषक वर्गों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। जो आज भी उतना ही प्रासंगिक तथा सत्य है। प्रस्तुत शोध कार्य में देशोपदेश एवं नर्ममाला के काव्यशास्त्रीय तत्वों का अध्ययन किया, गया है जिसके अन्तर्गत रस, छन्द, अलंकार, भाषा शैली आदि काव्य-सौंदर्य के प्रतिपादक तत्वों पर प्रकाश डाला गया है । देशोपदेश एवं नर्ममाला में आचार्य क्षेमेन्द्र ने तत्कालीन समाज के दूषित पक्षों एवं समाज का शोषण करने वाले विभिन्न वर्गों का व्यंग्यात्मक शैली में उपदेशपरक परिहास किया है। इन काव्यों में वर्णित विषयवस्तु कश्मीर एवं सम्पूर्ण भारतवर्ष के इतिहास हेतु बहुत महत्त्वपूर्ण है। कश्मीर की वर्तमान स्थिति को देखते हुये क्षेमेन्द्र की ये रचनायें और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। अतः इन रचनाओं का

समाजशास्त्रीय विश्लेषण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में क्षेमेन्द्र साहित्य का सहारा लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के भारत की सभ्यता एवं संस्कृति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जिससे आधुनिक युग में इसकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जाती है। संस्कृत साहित्य का इतिहास केवल भाषा का इतिहास नहीं है, यह प्राचीन भारत के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, व्यावहारिक और राजनीतिक जीवन का जीवंत चित्रण है। क्षेमेन्द्र की उपदेशात्मक कविताओं में कायस्थ, राजकर्मचारी, वेश्या, वैद्य, ज्योतिषी, व्यापारी, दुष्ट नट, बुद्धि, धोखेबाज आदि सामाजिक वर्गों के भ्रष्ट पहलुओं पर तीक्ष्ण हास्य और व्यंग्य के साथ बहुत ही मार्मिक उपदेश शामिल हैं। यह अपने सामाजिक चित्रण और आचरण संबंधी सलाह के लिए बहुत उपयोगी है। 11वीं सदी के समाज के लोकाचार और मूल्यों के प्रति क्षेमेंद्र का दृष्टिकोण क्या था और वे मूल्य वर्तमान समाज के संदर्भ में किस हद तक सार्थक हैं।यह अपने सामाजिक चित्रण और आचरण संबंधी सलाह के लिए बहुत उपयोगी है। देशोपदेश और नर्ममाला जैसी रचनाएँ हमें कश्मीर की दयनीय स्थिति से परिचित कराती हैं जहाँ शासन के नाम पर केवल लूट, छल, अभाव और विभिन्न प्रकार के आंतरिक हमलों को बढ़ावा दिया जा रहा था। क्षेमेन्द्र ने जो कुछ कहा है, उसे कम नहीं किया जा सकता। मेरा मानना है कि यह अध्ययन कश्मीर की मध्ययुगीन सामाजिक, राजनीति और शासन व्यवस्था की स्पष्ट तस्वीर पेश करेगा।

विषय सूची

1. देशोपदेश एवं नर्ममाला में प्रतिपाद्य विषय 2. देशोपदेश–नर्ममाला में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति 3. देशोपदेश एवं नर्ममाला में वर्णित प्रशासनिक व आर्थिक स्थिति 4. देशोपदेश व नर्ममाला के आलोक में कश्मीर के इतिहास का अध्ययन 5. देशोपदेश एवं नर्ममाला का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन 7. प्रबोध कुमार मिश्र के दूतकाव्यों में दार्शनिक तत्व 8. प्रबोध कुमार मिश्र के दूतकाव्यों में राष्ट्रिय चेतना। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्ट

22. मीना (सोनू)
ईश्वरविलास महाकाव्य का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन।
निर्देशक : प्रो. टेक चंद मीना
Th 28762

सारांश

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में मुख्य रूप से पांच अध्याय एवं एक पृष्ठभूमिस्वरूप भूमिका लिखी गई है, जिनमें श्रीकृष्ण भट्ट कवि द्वारा विरचित 'ईश्वरविलास' महाकाव्य का न केवल ऐतिहासिक अपितु सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी

अनुशीलन किया गया है। इस महाकाव्य के अध्ययन से हमें अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान होता है, साथ ही जयपुर नगर के निर्माण एवं वहां की नागरिकता, बाजार-व्यवस्था, राजाओं के परस्पर सम्बन्ध, राजनीति, कूटनीति, तत्कालीन समाज की संस्कृति का निदर्शन होता है। भूमिका में काव्य की भारतीय, पाश्चात्य एवं हिन्दी साहित्यकारो के अनुसार परिभाषायें, विलासकाव्यों का सामान्य परिचय दिया गया है। ईश्वरविलास के प्रणेता श्रीकृष्ण भट्ट के जीवनवृत्त को छोटे- छोटे शीर्षकों में पिरोने का कार्य किया गया है श्री कृष्णभट्ट का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'ईश्वर विलास' एक महाकाव्य है, जिसमें जयपुर के शासकों का इतिहास काव्य-रूप में वर्णित है । प्रथम अध्याय -इस अध्याय में अनुसंधेय ईश्वरविलास का ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है, जिसमें जयपुर के कछवाहा राजवंश का इतिहास वर्णित है। इस महाकाव्य के अध्ययन से जयपुर के इतिहास एवं अन्य अनेक ऐतिहासिकता घटनाओं का संज्ञान होता है। द्वितीय अध्याय-ईश्वरविलास के आधार पर मुख्य रूप से सामाजिक विभाजन, राजनैतिक व्यवस्थाओं, आर्थिक व्यवस्था और सांस्कृतिक विकास का अनुशीलन किया गया है। जिसमें सामाजिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत ब्राह्मणों को ज्ञान, धर्म, वेद-अध्ययन, यज्ञ आदि कार्यों का प्रतिष्ठित अधिकारी बताया गया है। तृतीय अध्याय -प्रस्तुत अध्याय में आचार-विचार में प्रतिबिम्बित (वैदिक) धर्म को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। दस धर्म के लक्षणों को इस तीसरे अध्याय में सविस्तार वर्णित करते हुए जयपुर के राजाओं के आचार-विचार में इनकी उपस्थिति को ईश्वरविलास महाकाव्य में से विविध प्रसंगों पर चिह्नित किया गया है। चतुर्थ अध्याय - ईश्वरविलास में प्रतिबिम्बित लोक विश्वास एवं लोक प्रथाओं का अनुशीलन किया गया है। लोक विश्वास समाज में प्रचलित उन धारणाों, विश्वासों, परंपराओं और प्रतीकों को कहा जाता है जो आम जनमानस द्वारा बिना किसी वैज्ञानिक प्रमाण या ग्रंथीय आधार के स्वीकृत होती हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपरा या सामाजिक व्यवहार के माध्यम से चलती रहती हैं। लोकप्रथाओं के संदर्भ में भी समाज की नैतिकता,रीति-रिवाज,पुरुष के आचरण तथा सामाजिक मर्यादाओं की स्पष्ट झलक साहित्यिक काव्यों, विशेषतः दरबारी साहित्य में देखने को मिलती है। पंचम अध्याय -श्रीकृष्ण भट्ट विरचित 'ईश्वरविलास' महाकाव्य में मुख्य रूप से दो बिन्दुओं का अनुशीलन किया जायेगा, शासकों के साधन और मनोरंजन के साधन शासकों के साधन के अन्तर्गत जयपुर के इतिहास और राजवंश में मनोविनोद के साधन, मनोरंजन, खेलकूद आदि का वर्णन किया गया है मनोरंजन के साधनों में उत्सव आदि का आयोजन एवं रीति-रिवाज आदि का अनुशीलन किया गया है। ईश्वरविलास महाकाव्य केवल जयपुर नरेश ईश्वरीसिंह का जीवनवृत्त नहीं है, यह जयपुर की सांस्कृतिक आत्मा, धार्मिक चेतना और उत्सवप्रियता का एक उत्कृष्ट प्रतीक भी है।

आधुनिक प्रस्तुतीकरण के कारण जयपुर केवल एक ऐतिहासिक नगर नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित है।

विषय सूची

1. ईश्वरविलास महाकाव्य की ऐतिहासिकता 2. ईश्वरविलास महाकाव्य में प्रतिबिंबित समाज 3. ईश्वरविलास महाकाव्य में प्रतिबिंबित धर्म 4. ईश्वरविलास महाकाव्य में प्रतिबिंबित लोक-आस्थाएं 5. ईश्वरविलास महाकाव्य में प्रतिबिंबित लोकरंजन के साधन। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

23. देवांगन (राजय कुमार)
कल्हणकृतराजतरङ्गिण्यां प्रयुक्तानां सञ्ज्ञापदानां व्याकरणशास्त्रीयविमर्शः।
निर्देशिका : डॉ. अनीता शर्मा, डॉ. पी. के. पाण्डा एवं डॉ. मालती राघव
Th 28159

सारांश

कल्हणकृतराजतरङ्गिण्यां सम्प्रयुक्तानां संज्ञापदानां व्याकरणशास्त्रीयो विमर्शः इतिविषयमाधारीकृत्य सम्पाद्यमानेऽस्मिन्ननुसन्धानप्रबन्धे शोधच्छात्रेणानेन अकारादिक्रमेण कृत्तद्धितसामासिकानां संज्ञापदानां व्याकरणशास्त्रीयो विमर्शः कृतः वर्त्तते। तत्र शोधक्रमे अनुसन्धानस्यास्य गुणवत्ताऽभिवर्धनाय अमरकोषादिनानाविधकोषग्रन्थानामत्र साहाय्यं स्वीकृतम्। अथ च कल्हणकृतराजतरङ्गिण्यां प्रयुक्तस्य तस्य पदस्य भावार्थमन्वाख्यन् तत्कालीनसमाजस्य, परिवेशस्य भाषागतव्यवहारस्य च परिज्ञानात्मकः प्रयासः कृतः। एवमेव सम्पाद्यमानस्यास्यानुसंधानस्य हृदयानुरूपेणसंस्थितस्य व्युत्पत्त्यादिशब्दसिद्धिपूर्वकं व्याकरणज्ञानाभिवर्द्धनाय चेष्टा कृता। अनन्तरञ्च लौकिकसाहित्यस्य उद्धरणानि प्रदर्शयन् तेषां शब्दानां लौकिकानुप्रयोगः प्रदर्शितः। जायमानस्यास्यानुसंधानस्य प्रथमेऽध्याये राजतरङ्गिणीकारस्य कल्हणस्य व्यक्तित्वस्य कृतित्वस्य च वर्णनं विहितमस्ति। अध्यायेऽस्मिन् काश्मीरशिरोमणेः कल्हणस्य जन्मस्थान-समय-अवस्थादिवर्णनपुरस्सरं राजतरङ्गिण्याः परिचयोऽन्वाख्यातः। द्वितीयेऽध्याये व्याकरणशास्त्रपरम्परायां प्रत्ययान्वाख्यानक्रमे प्रत्ययानां स्वरूपं तेषां भेदादीनां च वर्णनं कृतमस्ति। प्रत्ययानामन्वाख्यानक्रमे कृत्प्रत्ययविमर्शने सर्वकालद्योतकानां भूतभविष्यद्वर्तमानकालद्योतकानां कृत्प्रत्ययानां विमर्शो कृतो वर्त्तते। अध्यायेऽस्मिन् कृत्प्रत्ययविमर्शनानन्तरं तद्धितप्रत्ययानां वर्णनं शोधकार्यदिशा कृतं वर्त्तते। वर्णनक्रमेऽस्मिन् स्वार्थिकास्वार्थिकात्यन्तस्वार्थिकानां प्रत्ययानामादौ वर्णनं विहितमस्ति। अथ चाऽनन्तरं पञ्च महोत्सर्गाधिकाराणाम् अण्-ठक्-यत्-छ-ठञाधिकाराणां शास्त्रदिशाऽन्वाख्यानं कृतं वर्त्तते। अस्मिन्नेव द्वितीयेऽध्याये सामासिकपदानामर्थलाभाय समासशब्दस्य व्युत्पत्ति-प्रयोजन-भेदानां च वर्णनं कृतं वर्त्तते।

अस्मिन्ननुसन्धानक्रमे तृतीयादारभ्य पञ्चमोऽध्यायपर्यन्तं शब्दसिद्धिसंसाधकानां नानाविधप्रकृतिप्रत्ययानां साहाय्येन राजतरङ्गिण्यां प्रयुक्तानां कृत्तद्धितसमासान्तसञ्ज्ञापदानां सिद्धिकार्यपुरस्सरमनुसन्धानकार्यं सादरं कृतं वर्त्तते। शब्दसिद्ध्यनुक्रमे ह्यस्मिन् व्याकरणशास्त्रे प्रयुज्यमानाः कृत्प्रत्ययाः, तद्धितप्रत्ययाः, स्त्रीप्रत्ययाः अपि च औणादिकप्रत्ययाः सादरं स्वीकृताः। एताभिः प्रत्ययादिभिस्सह सामासिकपदानां सङ्कलनमपि अत्र कृतः वर्त्तते। येषां सङ्कलनेन अनुसन्धानकार्यमिदं साफल्यतामधिगतम्। अस्मिन् शोधप्रबन्धे शोधकर्तृणा कृदन्तसञ्ज्ञापदानां तद्धितान्तसञ्ज्ञापदानां सामासिकञ्च सञ्ज्ञापदानां नैकशः विभागं कृत्वा संस्तुतम्। कृदन्तसञ्ज्ञापदान्तर्गते औणादिकपदानां सामासिकपदानां स्त्रीप्रत्यान्तपदानां च समावेशः कृतः वर्त्तते। तथैव तद्धितान्तसञ्ज्ञापदेष्वपि। तेषां केषाञ्चन पदानामुल्लेखोऽधः क्रियते। एवं प्रकारेण शोधप्रबन्धस्यास्याऽनुशीलनेन ज्ञायते यत् कल्हणकृता राजतरङ्गिणीति नास्ति केवलं साहित्यशास्त्रमात्रमुत ऐतिहासिकं महाकाव्यमिति अपितु व्याकरणदिशाऽपि महाकाव्यमिदमप्रतिममिति।

विषय सूची

1. राजतरगिणीकारस्य कल्हणस्य व्सक्तित्वं कृतित्वश 2. संज्ञापदपिधाने वैयाकरणप्रत्यायानां विमर्श 3. कल्हणकृतराजतरगिण्यिां प्रयुक्तानां कृत्संज्ञकपदानां व्यारकरणशास्त्रीयविमर्शः 4. कल्हणराजतरगिणिें प्रयुक्तानां तद्धितसंज्ञकपदानां व्याकरणशास्त्रीयविमर्शः 5. कल्हणकृतराजतरगिण्यिां प्रयुक्तानां सामासिकपदानां व्याकणशास्त्रीयविमर्श। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

24. शर्मा (संजीव कुमार)

आयुर्वैदिक त्रिदोष का दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक एवं रोगोत्पत्ति विषयक अध्ययन (ज्योतिषशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में)।

निर्देशक : डॉ. राजीव रंजन, प्रो. रमेश चन्द्र भारद्वाज एवं प्रो. सुषमा राणा
Th 28170

सारांश

ज्योतिषशास्त्र में रोगोत्पत्ति के कारण वात,पित्त व कफ का ग्रहों से सम्बन्ध,शरीर के अवयवों में राशि, ग्रहों की प्रकृति,धातु,रस ग्रह के स्वरूप,रोगों का विभाजन (जन्मजात एवं आगन्तुक), रोग ज्ञान के सिद्धान्त,रोगोत्पत्ति के हेतु आदि के आधार पर रोग को जाना जाता है | ज्योतिषशास्त्र में त्रिदोष व्याधियों का कुण्डली के द्वादश भावों के अनुसार रोग, आयु का निणर्य, त्रिदोष की प्रकृति अनुसार ग्रहों के योग, जो आयुर्वेद के लिये अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि आयुर्वेद एवं ज्योतिष इन दोनों शास्त्रों ने पूर्वजन्म के विषय की मान्यता हैं कि वह कर्मज व्याधि को स्वीकार करते है | ग्रह चिकित्सा का शास्त्रीय विवेचन के लिए रत्नविज्ञान, मन्त्रशास्त्र, आयुर्वेद, धर्मशास्त्रों में मन्त्र,

मणि, औषधि, दान एवं स्नान के समस्त शास्त्रीय पक्षों से मानव की व्याधियों का निवारण किया जा सकता है | आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक इन दुःखों को स्वीकार करते हैं | ऐसा मत है कि जो रोग औषधि के उपचार से सही नहीं होने से कर्मज माना गया है | उस चिकित्सा शास्त्र के ज्ञान से क्या लाभ जो रोग के लक्षण, उसके प्रभाव व नाम की सूचना तो देता है परन्तु उसका निदान नहीं दे सकते है | समाधान के विना कोई भी शास्त्र अथवा विज्ञान अपूर्ण ही माना जायेगा| ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न योगों के लक्षण एवं उनके प्रभाव, उनके कार्य व समाधान को बताता है| आयुर्वेद में ग्रह-नक्षत्रजन्य प्रकोप की परम्परा को मानते हैं क्योंकि जब तक वैद्य ज्योतिष का ज्ञान न हो तो वह पूर्ण रूप से रोगी की चिकित्सा करने में असमर्थ होता है| रोग की आयुर्वैदिक विभिन्न व्याधियों का आधार त्रिदोषों के असन्तुलन के कारण को व्यक्त करते हैं| शरीर में वात,पित्त एवं कफ की मात्रा का समन्वय होने पर शरीर सामान्यतया स्वस्थ रहता है | किन्तु इनकी न्यूनता की मात्रा शरीर में रोग उत्पन्न के विषय को हमें ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के आधार पर किस तरह से दोष को प्रभावित करते है इस के आधार पर यह त्रिदोष-विषयक व्याधियों का हम ज्योतिषशास्त्रीय रीति से जातक की कुण्डलियों के प्रयोग द्वारा मानव के रोगोत्पत्ति को स्पष्ट किया जाता है| किन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अपनी तकनीकी के आधार पर रोग का बोध कराता है व कभी स्पष्ट भी नहीं होता है| इस से स्पष्ट होता हैं कि आज भी शास्त्रीय परम्परा में मानव के कल्याण के सूत्र अंतर्निहित है | ज्योतिष स्वयं को जानने का सुलभ एवं प्रामाणिक मार्ग उद्धृत करता है जिसके आधार पर मानव अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक, जन्मजात व सम्भावित प्रवृत्तियों को जानकर उनमें आवश्यक परिष्कार तथा संस्कार को ग्रहण करके सन्तुलन और सामञ्जस्य स्थापित करते हुएरोग मुक्त जीवन का व्यापन कर अपने आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक ऋणों के निवारण में समर्थ हो सके | इस शास्त्र का उपदेश करने में ऋषियों का यही अभीष्ट प्रतीति होता हैं अन्य नहीं| वस्तुतः विविध ग्रह स्थितियों का प्राणी के शारीरिक व मानसिक क्रियाओं का कोई सम्बन्ध आवश्यक है, जिसका निरूपण आज तक ज्ञान-विज्ञान नहीं कर सका | परन्तु इस सम्बन्ध का प्रभाव इतने विस्तृत रूप में आता है कि उसकी सत्ता को नकारा नहीं जा सकता है | आधुनिक वैज्ञानिकों से हमारी करबद्ध निवेदन हैं कि निर्मूल तर्क-वितर्क करने की अपेक्षा उनको जानने एवं प्रकृति के गोपनीय रहस्यों को खोजने का प्रयास करें |

विषय सूची

1. आयुर्वेदशस्त्र के मूलभूत सिद्धान्त एवं त्रिदोष स्वरूप का विवेचन 2. ज्योतिषशास्त्र में आयुर्वेदिक त्रिदोषा का स्वरूप 3. आयुर्वेदिक त्रिदोष का दार्शनिक स्वरूप ज्योतिषशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में 4. आयुर्वेदशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र में त्रिदोष का मनोवैज्ञानिक विवेचन 5. आयुर्वेदशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र की रोगोत्पत्ति में उपयोगिता 6. आयुर्वेद त्रिदोष की ज्योतिषीय अनुसन्धानात्मक समीक्षा। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

25. स्मृति बाला

उपनिषदों के शांकरभाष्य में परिलक्षित नैतिकमूल्य ।

निर्देशिका : डॉ. ममता त्रिपाठी, डॉ. अवधेश प्रताप सिंह एवं डॉ. श्रुति राय

Th 28174

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'उपनिषदों के शांकरभाष्य में परिलक्षित नैतिकमूल्य' उपनिषद् के शांकरभाष्य में प्राप्त नैतिकमूल्य के गवेषणा-पूर्ण अध्ययन द्वारा लिखा गया है। प्रथमतः भारतीय ज्ञान परम्परा में औपनिषदीक ज्ञानधारा को प्रस्तुत करते हुए उपनिषद् की संख्या, रचनाकाल, प्रतिपाद्य विषय, उपनिषद् के व्याख्याकार एवं आचार्य शंकर का भारतीय संस्कृति के प्रति अवदान आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तदनन्तर नैतिकमूल्य की शास्त्रीय एवं व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए नैतिकमूल्य के विविध आयामों को प्रस्तुत किया गया है तथा विविध विद्वानों के दृष्टिकोण को भी इस सम्बन्ध में प्रस्तुत किया गया है। उपनिषद् में यद्यपि परोक्ष रूप में नैतिक-बोध कम प्राप्त होता है एवं नीति का प्रसंगवत् उल्लेख एवं आध्यात्मिक पक्ष प्राप्त होता है। कुछ उपनिषद् में यत्र-तत्र नैतिकमूल्य का प्रत्यक्ष कथन किया गया है, किन्तु अधिकांश स्थानों पर आध्यात्मिक वर्णन एवं प्रसंग में न्यायोचित बुद्धि द्वारा नैतिकमूल्य का भाव ग्रहण किया गया है जिसका वर्णन शोध-प्रबन्ध के तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में विस्तार पूर्वक किया गया है। उपनिषदीय ज्ञान आत्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रकाश करके आत्मसम्बन्धी स्वाभाविक अज्ञान को दूर करते हुए संसार के शोक-मोहादि धर्मों के विच्छेद के साधनस्वरूप आत्मैकत्वादि विज्ञान को ही उत्पन्न करता है। सभी उपनिषदों का अभिप्राय आत्मैकत्व-बोध में है। निजी स्वार्थ का अतिक्रमण कर सर्वजन को स्व की परिधि में लाना सर्वात्मभाव है यही आत्मैकत्व-दर्शन है जो नैतिकमूल्य का उदात्त रूप है। उपनिषद् आचार के आधार के रूप में रूढ़ियों, सामाजिक परंपराओं, राजनीतिक नियम आदि का उल्लेख नहीं करती, अपितु कर्म की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि उपनिषदीय नैतिकमूल्य सदैव प्रासंगिक, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। उपनिषद् अपने रचनाकाल से ही अपनी अक्षय अर्थवत्ता और आत्मिक शक्ति से मानव पीढ़ी को अंतर्दृष्टि और बल प्रदान कर प्रेरणा देती रही है और यह आगे भी मानव का पथ-प्रबोधन करती रहेगी। अन्ततः उपनिषदीय मूल्य-बोध का आधुनिक युग में प्रासंगिकता को प्रस्तुत किया गया है।

विषय सूची

1. भारतीय ज्ञान परम्परा में औपनिषदिक ज्ञानधारा तथा आचार्य शंकर का अवदान 2. नैतिकमूल्य : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप तथा शास्त्रीय एवं लोकदृष्टि 3. ऋग्वेदिक एवं युजुर्वेदिय उपनिषदों के शांकरभाष्य मे परिलक्षित नैतिकमूल्य 4. सामवेदिय एवं अथर्ववेदीय

उपनिषदों के शांकरभाष्य में परिलक्षित नैतिकमूल्य 5. उपनिषदों में परिलक्षित नैतिकमूल्या का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता। उपसंहार। सन्दर्भग्रंथ सूची।

26. सपना

संस्कृत में आधुनिक बाल साहित्य : उद्भव एवं विकास ।

निर्देशिका : डॉ. सुशील कुमारी, प्रो दया शंकर तिवारी एवं भारतून्दु पाण्डेय

Th 28171

सारांश

इस शोधकार्य में संस्कृत बाल साहित्य की परंपरा, उसका विकास, और उसके वर्तमान स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। बाल साहित्य के तत्व प्राचीन संस्कृत ग्रंथों जैसे वेद, पुराण, और पंचतंत्र में समाहित हैं, जो बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक रहे हैं। संस्कृत साहित्य में बाल्यावस्था को स्वर्ण काल माना गया है, क्योंकि यह व्यक्ति के विकास का आधार है। विशेष रूप से संस्कृत साहित्य में नैतिक शिक्षा की प्रचुरता है, जो बच्चों के लिए ज्ञानवर्धक एवं रोचक होती है। इस अध्ययन में बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं पर चर्चा की गई है, जैसे कथा, कविता, उपन्यास, रूपक, और पत्र-पत्रिकाएँ। इन विधाओं के माध्यम से बच्चों में नैतिकता, संस्कार, और बौद्धिक विकास की भावना उत्पन्न होती है। बाल गद्य काव्य और बाल गीत बच्चों के मानसिक और बौद्धिक विकास में सहायक हैं। उदाहरणस्वरूप, डॉ. सुभाष वेदालंकर द्वारा रचित "संस्कृत शिशुगीतम्" में 39 बाल गीतों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और राष्ट्रभक्ति की भावना का प्रसार किया गया है। शोधकार्य में संस्कृत बाल साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उपन्यासों और नाटकों का भी विश्लेषण किया गया है। इन रचनाओं के माध्यम से बच्चों को समाजिक, नैतिक, और शैक्षिक मूल्यों से अवगत कराया जाता है। विशेष रूप से, संस्कृत साहित्य में बाल मनोविज्ञान का समावेश इसे समकालीन शिक्षा पद्धतियों से जोड़ता है, जो बालकों की मानसिक और भावनात्मक स्थिति को समझने में मदद करता है। अंततः, यह शोध यह संकेत करता है कि संस्कृत बाल साहित्य का गहन अनुशीलन और समकालीन संदर्भ में पुनर्विवेचन न केवल इस साहित्य की जीवन्तता को सशक्त कर सकता है, बल्कि यह भारतीय शिक्षा पद्धति को भी समग्र रूप से सुदृढ़ कर सकता है।

विषय सूची

1. भारतीय दर्शन में आनन्द विषय अवधारणा 2. अद्वैत वेदान्त के विभिन्न ग्रन्थों में आन्नद विषयक अवधारणा 3. रसेतर सिद्धान्त में आनन्द विषयक अवधारणा 4. साहित्यशास्त्रीय विभिन्न ग्रन्थों में रम सिद्धान्त में वर्णित आनन्द विषायक अवधारणा 5. अद्वैत वेदान्त एवं साहित्यशास्त्र के रस सिद्धान्त ते वर्णित आनन्द की अवधारणाका तुलनात्मक अध्ययन । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

27. सम्पत कुमार

रेवाप्रसाद द्विवेदी विरचित नाट्यनुशासनम् : एकः समीक्षात्मक अध्ययन ।

निर्देशक : डॉ. एम. किषन, प्रो. वेदप्रकाश डिंडोरिया एवं प्रो. टेकचन्द मीणा

Th 28172

सारांश

शिव को नटराज कहा गया है। उन्होंने ताण्डव नृत्य तथा भगवती पार्वती ने लास्य नृत्य प्रदान करके भारतीय नाट्य में अपूर्व योगदान दिया। वस्तुतः विश्व की रङ्गगशाला में नटराज शिव का अभिनय ही विभिन्न रूपों में दिखाई दे रहा है। भगवान् विष्णु भी अपने विभिन्न रूपों में विभिन्न रसों का अभिनय करने के लिए ही इस विश्व रङ्गमञ्च पर अवतीर्ण हुए। 'नाट्यानुशासन' में रङ्गपीठ, मण्डपादि विषयक तत्त्वों का विवेचन किया गया है। 'नाट्यानुशासन' यह नाम सुनकर सर्वप्रथम प्रश्न यह उठता है कि जब प्राचीन काल से ही नाट्य-सम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध हैं तो यह एक अन्य 'नाट्यानुशासन' ग्रन्थ की आवश्यकता ही क्यों? इस ग्रन्थ का प्रयोजन-विषयक विमर्श किया गया हैं। आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ने न केवल काव्य, महाकाव्य, नाट्य, काव्यशास्त्र आदि के क्षेत्र में योगदान दिया, अपितु अनेक मौलिक तत्त्वों के रहस्यों को भी उद्घाटित करके नाट्यक्षेत्र में वैदुष्यपूर्ण ज्ञान का परिचय दिया। 'भरतदर्शन' नामक उन्मेष, जिसमें 113 कारिकाएं सङ्कलित हैं। इन कारिकाओं में उज्जैन के अवन्तीनगर में समायोजित कालिदास महोत्सव में उपस्थित विद्वानों ने महाकालेश्वर धाम जाकर भगवान् शिव की आराधना की तथा नाट्यकलादि विधाओं हेतु प्रार्थना की। द्विवेदी कहते हैं कि सभी विद्वान् नटराज से आराधना करते हैं आप ही आदिनट हैं आपका नाट्य ही जगत् की सृष्टि और विनाश का कारणभूत है और गुणत्रय (सत्त्व, रजस् व तमस्) आपके यशोगान करने वाले हैं। तत्पशचात् आचार्य द्विवेदी ने उन सभी तत्त्वों को व्याख्यायित करने हेतु लक्षित किया जिन सभी तत्त्वों के रहित किसी काव्य को नाट्य की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जा सकता है। काव्य-रचना के सतत् अभ्यास से कवि काव्य-सौन्दर्य को उत्कृष्ट से सर्वोत्कृष्ट बनाता है जिससे सहृदयों को काव्यानन्द की प्राप्ति होती है। काव्यानन्द की प्राप्ति का मुख्य आधार रस है। अन्तिम अध्याय में आचार्य की रस विषयक मान्यताओं की समीक्षा प्रस्तुत है।

विषय सूची

1. नाट्य-विमर्श की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 2. रेवाप्रसाद द्विवेदी की नाट्यशास्रीय प्रमुख विचार एवम् उनकी विचारधारा 3. नाट्यनुशासनम् के भरतदर्शनम् की मीमांसा 4. नाट्यानुशासनम् के नाट्यशारीरिकम् की मीमांसा 5. कलासमाधि और रसभोग की मीमांसा। उपसंहार। परिशिष्ट। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

28. सिंह (निमेश कुमार)

झारखण्ड के आधुनिक संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. वेद प्रकाश डिंडोरिया

Th 28817

सारांश

प्रस्तावित शोधकार्य का प्रधान उद्देश्य झारखण्ड प्रान्त में आधुनिक काल के संस्कृत साहित्य का बहुविध दृष्टिकोणों से अनुशीलन करना है, जिससे इस प्रदेश में निर्मित आधुनिक संस्कृत साहित्य की नवोन्मेषी प्रवृत्तियों एवं अभिनव आयामों को विशद रूप से प्रकाश में लाया जा सके। इस शोध का एक महत्वपूर्ण अभीष्ट झारखण्ड के आधुनिक संस्कृत साहित्य के विविध पक्षों- यथा पद्य, गद्य, दृश्य-श्रव्य माध्यमों तथा अन्य साहित्यिक विधाओं का सर्वेक्षणात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करना है। इस शोध के माध्यम से इस प्रदेश के साहित्यकारों द्वारा संस्कृत साहित्य को प्रदान की गई नवीन सर्जनात्मकता, सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना तथा साहित्यिक उपलब्धियों का सम्यक् मूल्यांकन किया जाएगा। इसके साथ ही साथ आधुनिक संस्कृत साहित्य की सुदीर्घ परम्परा में झारखण्ड प्रान्त के रचनाकारों के योगदान को चिह्नित कर, उनके साहित्यिक अवदान का समीक्षात्मक विश्लेषण इस शोध का केन्द्रीय लक्ष्य है। इस शोधकार्य के द्वारा झारखण्ड के साहित्येतिहास में संस्कृत साहित्य की वर्तमान उपलब्धियों एवं भविष्य संभावनाओं का भी स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाएगा।

विषय सूची

1. झारखण्ड प्रदेश : एक सामान्य परिचय 2. झारखण्ड राज्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य : महाकाव्य 3. झारखण्ड राज्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य : रूपक 4. झारखण्ड राज्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य : गद्यकाव्य 5. झारखण्ड राज्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य : ऐतिहासिक काव्य 6. झारखण्ड रात्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य : खण्डकाव्य 7. झारखण्ड राज्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य : नवीन प्रवृत्तियॉं 8. झारखण्ड राज्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य : स्फुट रचनाएँ । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

29. सोनू

भोज व्याकरण का समीक्षात्मक अध्ययन ।

निर्देशिका : प्रो. अन्जू सेठ प्रो. निशा गोयल एवं डॉ. सोमवीर

Th 28173

सारांश

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का शीर्षक "भोज व्याकरण का समीक्षात्मक अध्ययन" है। शोधप्रबन्ध कुल छः अध्यायों में विभक्त है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में पाणिनि तथा पाणिनीयेतर व्याकरणों से तुलनात्मक अध्ययन व विश्लेषणात्मक अध्ययन किया

गया है। प्रथम अध्याय में विनयसागर में व्यक्तित्व, कर्तृत्व और उनका स्थितिकाल का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में भोज व्याकरण की संरचना, विषयवस्तु और व्याख्या संस्करण का वर्णन किया है। भोज व्याकरण का गुजराती भाषा में अनुवाद डॉ. जयदेव अरुणोदय जानी द्वारा किया गया। इसकी एक प्रति भोगीलाल लेहरचंद इंस्टिट्यूट ऑफ इंडोलॉजी के पुस्तकालय में विद्यमान है। तृतीय अध्याय में भोज व्याकरण के सञ्ज्ञा, सन्धि प्रकरणों का विमर्श किया गया है। सञ्ज्ञा प्रकरण का पाणिनीय व पाणिनीयेतर व्याकरण ग्रन्थों से तुलना से बोध होता है कि अन्य व्याकरण ग्रन्थों की अपेक्षा भोज व्याकरण का सञ्ज्ञा प्रकरण लघुतर है। पाणिनीय व्याकरण में उक्त अच्, हल्, प्रातिपदिक आदि संज्ञाओं के स्थान पर भोज व्याकरण में क्रमश: स्वर, व्यञ्जन, नाम आदि अन्वर्थ संज्ञाओं का प्रयोग सरलता हेतु किया है। (अन्त्यो य: स्वरस्तदादिवर्णष्टिसंज्ञो भवति। अन्त्य स्वर है जिस वर्ण के आदि में, उस स्वर सहित वर्णसमुदाय की टि सञ्ज्ञा होती है।) 'सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्' परिभाषा प्रयोग करते हुए पूर्वरूप सन्धि के स्थान पर लोप सन्धि का प्रयोग कर कार्यों की सिद्धि की है। नवीन शैली का प्रयोग करते हुए विनयसागर ने लोपश् सञ्ज्ञा विधान किया है। "लोपशि पुनर्न सन्धि:" लोपश् सञ्ज्ञा के बाद अन्य कोई भी सन्धि कार्य नहीं होता है। यथा- श्रिया इदम्, इस उदाहरण में यकार की लोपश् संज्ञा द्वारा लोप होकर, अन्य सन्धि कार्यों का निषेध हो जाता है। 'हर इह' की सिद्धी पाणिनीय व्याकरण में "पूर्वत्रासिद्धम्" सूत्र द्वारा सपादसप्ताध्यायी तथा त्रिपादी व्यवस्था की सहायता से सम्पन्न होती है। चतुर्थ अध्याय में भोज व्याकरण के स्वरान्त- हसान्त (पुल्लिंग-स्त्रीलिंग-नपुंसकलिंग) प्रकरणों का विमर्श किया गया है। एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्तियों को लोक से सिद्ध मान लिया है। अत: उपर्युक्त ग्रन्थों से तुलना उपरान्त यह ज्ञापित होता है कि विनयसागर ने नई शैली का प्रयोग करते हुए पूर्ववर्ती वैयाकरणों से सरलता व लघुतापूर्वक अस्मद् व युष्मद् शब्दों की सिद्धियों को निष्पन्न किया है। पञ्चम अध्याय में भोज व्याकरण के अव्यय प्रकरण, स्त्री प्रत्यय, विभक्त्यर्थ, समास व तद्धित प्रकरणों का विमर्श किया गया है। अव्यय प्रकरण में 14 स्वर निपात और चादि गण में 67 शब्द हैं। विनयसागर ने उपसर्गों की संख्या 20 स्वीकार की है। महोपाध्याय ने विभक्त्यर्थ प्रकरण में कारकों का विधान "शेषा: कार्ये" (स्युरेष्वर्थेषु च शेषा: कार्ये कर्तृसाधनयोर्दानपात्रे। विश्लेषावधौ सम्बन्ध आधारभावयोरेवम्।) द्वारा किया भोज व्याकरण में प्रतिपादित कारक प्रकरण पर कातन्त्र का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भोज व्याकरण में अपत्याधिकारप्रकरण, चातुरर्थिक प्रत्यय, शैषिकप्रत्यय, प्राग्दीव्यतीयप्रकरण आदि प्रकरणों का पृथक रूप से वर्णन नहीं किया है, इन सभी प्रकरणों का वर्णन तद्धित प्रकरण में ही कर दिया है। षष्ठ अध्याय में आख्यातप्रकरण, कर्त्रर्थप्रक्रिया, निष्ठाप्रक्रिया, क्वस्वादि प्रकरण, शीलार्थ प्रक्रिया, उणादि, कृत्य, स्त्रीप्रक्रिया का विमर्श किया गया है।

विषय सूची

1. श्री विनय सागर और उनका भोज व्याकरण : एक अध्ययन 2. भेज व्याकरण के संज्ञा-सन्धि प्रकरणों का विमर्श 3. भोज व्याकरण के स्वरान्त-हसान्त लिंग प्रकरणों का विमर्श 4. भोज व्याकरण के अव्यय प्रकरण, स्त्री प्रत्यय, विभक्त्यर्थ व प्रकरणें का विमर्श 5. भोज व्याकरण के आख्यात प्रकरण का विमर्श 6. भोज व्याकरण के कर्त्रर्थप्रक्रिया, तुमन्तप्रक्रिया, कृत्यप्रक्रिया, स्त्रीप्रक्रिया का विमर्श। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथसूची।